श्री जानकीवल्लभाय नमः
श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः
श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

श्री जयपुर गलतागाद्याधीश्वर श्री सीताराम रसिकाचार्य अनन्त श्री स्वामी मधुराचार्य महाराज प्रणीता —

श्री माधुर्यकेलि कादम्बिनी

भावबोधिनीं टीकाकार
श्री भद्रप्रदेव वंशावतंश

श्री श्री १०८ श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज मधुकरके श्री चरणकमलभ्रमर जानकीशरण मधुकर श्री चारुशीलामन्दिर श्री चारुशीला बाग श्री जानकी घाट श्री अयोध्याजी

प्रकाशक :—
श्री मैथिलीशरणजी
एवं
श्री मदनलाल चितलांगिया
४०, स्ट्रांड रोड, कलकत्ता-७

भूमिका

सियाराम मय सब जगजाणी, करौं प्रणाम जोरि जुगपाणी ।
देव देखि तव बालक दोउ, अब न आखि तर आवत कोऊ ।।

अनुराग की दृष्टि ही अलग होती है वह दृष्टि लोकबाह्य होती है प्राकृत पण्डितों ने पेड़, पहाड़, पत्थर, पानी और पापियों को भी परमब्रह्म कहा है परन्तु उन्होंने केवल बाक् शक्ति से ब्रह्मत्व सिद्ध करके वैराग्य व दम समादि को चौपट किया जब की पूज्यपाद श्री गोस्वामीजी ने अपनी अद्भुत चामत्कारिक बाँणी से लिखा है कि—"तुलसी भवानिहि पूजि पुनि २ मुदित मन-मन्दिर चली" अर्थात तुलसी भी श्री जानकीजी के साथ गिरिजा प्रसाद वाणीसे हर्षित हो श्रीजानकी जी के साथ मानसिक मन्दिर में गई । "कौतुक विनोद प्रमोद प्रेम नजाय कहि जानहि अली ।"

कहा ! यह अवस्था तभी होती है जब श्रीगुरु कृपा से हृदय के नेत्र खोले जायँ ।

शरण शब्द पर यह व्याखा है कि—शरणं गृह रक्षित्रो: । इस कोष के प्रमाणानुसार भगवान के घरमें जाना और रक्षक रूप में परमात्मा को स्वीकार करना, यह शरण शब्द का अर्थ है । अब भगवान का घर दो प्रकार से है—एक तो गीता अ० १५ श्लो० ६ में लिखा है

नतद्भासयतेसूर्यो नशशांको नपावकः ।।
यद्‌गत्वा न निवर्तन्ते तद्धामपरमंमम ।। ६ ।।

अर्थात जहाँ सूर्य चन्द्र अग्नि का प्रकाश नही पहुँचता है और जहाँ जाने के बाद आतमा का फिर जन्म - मरण नहीं होता संसार में नहीं आता है। वह मेरा परमधाम है । दूसरा भगवान का धाम—मैत्रेय्युपनिषद अ० २ मन्त्र १ में लिखा है देहो देवालय: प्रोक्त: स जीव: केवल: शिव: ।। अर्थात जीवात्मा जब भगवान के भजन में लगकर इन्द्रिय विषय से परे हो जाता है तो उस अवस्था में वह भक्त कल्याणमय भगवान का देवालय (मन्दिर) हो जाता है । अत: मुण्डकोण्डनिषद मुण्डक १ श्लो० २ के मन्त्र १२ में लिखा है कि

स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ अर्थात् मुमुक्षू जीव गुरु केही शरण में जावे, वह गुरु सत्सम्प्रदाय का शिष्य हो और अपने परम्परागत सिद्धान्त में निष्ठावान हो। ऐसे गुरु भगवान के धाम हैं, अतः गुरु का चेला होतो घर में जाना और गुरु द्वारा प्राप्त मन्त्र को जपना। यह भगवान को रक्षक रूप में स्वीकार करना कहा जाता है; क्योंकि मन्त्र को मनन करनेपर परमात्मा रक्षा करते हैं "मननात् - त्राणनात् मन्त्रः" ऐसा श्रीरामताण्डनयोपनिष में लिखा है इस प्रकार शरणागत होने पर शरणागत को गुरु द्वारा प्राप्य, प्रापक, प्रतिफल, उपाय व विरोधी इन पांच अर्थों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है और

पुण्ड्रमुद्रा तथा नाम माला मन्त्राश्च पञ्चमाः।
अमीहि पञ्चसंस्काराः परमैकान्त हेतवः॥

इस प्रकार पञ्चसंस्कार हो जाने के बाद अब अकारन्तय सम्पन्न होना पड़ता वह अकारन्तय - अनन्यशेषत्व, अनन्यभोग्यत्व, अनन्य रक्षकत्व रूप में कहा जाता है। तब जीवत्मा शुद्ध शरणागत माना जाता है। इस अवस्था में अनुकूल संकल्प करना। प्रतिकूल संकल्पों का त्याग करना। रक्षा भगवान करेंगे, इसमें विश्वास करना रक्षक रूप में स्वीकार करना। अपना भार परमात्मा को समर्पण करना कार्पण्य पूर्वक लोक प्रारब्ध बिताता हुआ भी "मन तँह : जँह रघुबर वैदेही बिन मन तन दुःख सुख सुधि केही" इस प्रकार के अवस्था प्राप्त वैष्णव के लिये यह श्री पूज्यपाद आचार्य श्रीमधुराचार्यजी की वाणी माधुर्यकेलि कादाम्बिनी ग्रन्थ पाठ्य है यद्यपि यह ग्रन्थ गुप्तरहस्य है; परन्तु समय की विपरीत व्यवस्था में ग्रन्थ वैपरीत्य में न उत्तर जाय अतः ग्रन्थरक्षार्थ भावुक भक्त हितार्थ प्रकाशित हुवा है।

श्रीराम—जो सबमें रमै और सबको अपने में रमावे और जिसमें सबरमै वह राम रमना क्या है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध और ये पांच विषय प्राकृत व दिव्य दोनों हैं प्राकृत विषय का ज्ञान इन्द्रियों से होता है और दिव्य विषय गीता अ० ६ श्लो० २१ में लिखा है—सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्य मतीन्द्रियम्। अर्थात् अत्यन्त महासुख बुद्धि द्वारा ग्राह्य है, इन्द्रिय विषय नहीं है। इन्द्रिय विषय सुख तो गीता अ० १८ श्लो० ३८ में लिखा है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसंस्मृतम् ॥ ३८ ॥

अर्थात्—इन्द्रियों द्वारा प्राप्त सुख भोगते समय थोड़ा अच्छा लगता है वह भी अज्ञानियों को। परन्तु उसका परिणाम नर्क भोगना पड़ता है। वही शब्दस्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय सुख बुद्धिद्वारा—"अभ्यासाद्रमतेयत्र दुःखान्तंच निगच्छति।" अर्थात्—दिव्य गुरु से प्राप्त वाँणी का अभ्यास और संसार शरीर सुख से वैराग्य करके परमात्मा के अनुराग में प्राप्त करने से दुःख का सम्यक्प्रकार अन्त हो जायगा ॥ परमात्मा का शद्ध स्पर्श, रूप, रस, गन्ध दिव्य अमृत है जैसा कि गीता अध्याय ६ श्लो० २८ में लिखा है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगीविगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्श मत्यन्तं सुखमश्नुते ॥

अर्थात्—मननात् त्राणनात् मन्त्रः। इस श्रीराम पूर्वतापनि उपनिषद अ० १ मन्त्र १२ के अनुसार श्री गुरु द्वारा प्राप्त मन्त्र को मनन करके अपनी समस्त रक्षा का इन्तजाम अपनी बुद्धि में निश्चय करले इस प्रकार दृढ़ बुद्धि असम्मूढ होकर मन से परमात्मा के नाम रूप लीला धाम की इच्छा करै, बुद्धि से भी वही कल्पना करै इसप्रकार परमात्मा के लिये मन बुद्धि अर्पण करते हुवे हमेशा श्री प्रियाप्रीतम भाव का योगी सर्व पाप - विमुक्त होकर उस परमब्रह्मपरमात्मा श्रीराम का सम्यक्प्रकार सर्वांग स्पर्श प्राप्तकर महासुख का भोग सुखपूर्वक करता है यही बात ब्रह्म सूत्र में भी लिखी है—भोगमात्र साम्यलिंगा ४-४-२१ अर्थात्—परमात्मा की कृपा से वह आत्मा जब परमात्मा को प्राप्त करता है तो वे परमात्मा श्रीराम इस अपनाये हुवे आत्मा को अपने बराबर सुख भोग देते हैं व अन्त में इसलिये लगाया कि आगे मन्त्र में लिखा है कि—'जगत व्यापार वर्ज्यतू" ४-४-१७। अर्थात् अपनी माया द्वारा उत्पन्न जगत सृष्टि पालन प्रलय कार्य इस जीव के रुचि पर नहीं होने देते है। यद्यपि जीव ही से सब कार्य कराते है परन्तु रुची अपनी ही रखते है। आत्मा प्रेर्य है परमात्मा प्रेरक हैं। इच्छा करने के लिये जीव को परमात्मा ने अधिकार दे रखा है अतः आत्मा अनुकूल वा प्रतिकूल इच्छा का हक है

अनन्त जन्म के अज्ञात पुण्य से सन्त कृपापात्र मिलते हैं उन कृपा पात्र सन्तों के दरस परस सम्भाषण से जीव को अनुकूल इच्छा होती है तो यह संयोग लगता है कि जीव शरणागत होगा इस शरणागति धर्म में निष्ठा होते ही—गीता में लिखा है—अ० २ श्लो० ४० में

नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यबायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

अर्थात्—इस शरणागति धर्म का कुछ भी पुण्य कर्म नाश नहीं होता है अक्षय पुण्य होता है विघ्न भी शरणागत को नही स्पर्श करते हैं इस शरणागतिधर्म का आदर करते हैं। नर्क जाना बन्द हो जाता है। सर्व भाव से शरणागत होने पर परमात्मा प्राप्त हो जाते हैं।

श्रीराम—जो सबमें रमता है सब को अपने में रमाता है जिसमें सब रमते है जिसको पाकर फिर आत्माको यह सन्तोष हो जाता है कि बस अब हमको कुछ नही चाहिये — यलब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः गीता ६-२२ रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनी इतिराम पदेनासौ परब्रह्म-भिधयितें। श्रीराम पूर्व तापनी उपनिषद अ० १ मन्त्र ६—जिस चैतन्य आत्मा के भी आत्मावेपरमात्मा नित्य अनन्त आनन्द समुद्र में योगिजन अनन्तरमण करते हैं उसका नाम इसी से राम है जो परंब्रह्म है श्रियोरमण सामर्थ्या-त्सौन्दर्य गुणसागरात्। इतिरामपदेनासौपरं ब्रह्माभिधीयते। इति पाद्मी उत्तरखण्डे--अनन्तश्रियों से रमण करने कराने की जिनमें सामर्थ्य हो और सौन्दर्यादि उत्तम नायक गुणों के जोगुणसागर हों उन्ही को रामपद से परब्रह्म कहा जाता है। इसी प्रकार श्रीमहावाल्मीकी रामायण में भी कहा गया है--

सूर्यस्यापिभवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।
श्रियाः श्रीश्चभवे दग्र्याकीर्त्याकीर्ति क्षमाक्षमा ॥

बा० अयोध्याकाण्ड सर्ग ४४ श्लोक १५ में जो श्रीराम सूर्य के भी सूर्य होते हैं अग्नि के भी अग्नि और समस्त प्रभुवों के भी प्रभू हैं उन्ही की पत्नी अनन्तश्रियों कि आदिकारण श्री अनन्तकीर्तियों की मूलकारण की अनन्त क्षमाओं की आदि कारण परात्परक्षमा श्री सीताजी हैं ऐसा श्रीसुमित्राम्बाने श्रीकौशल्याम्बा को कहा है।

श्रीमहाबाल्मीकिजी ने - रामोरमयताम्बरः—अर्थात् श्रीराम समीरमण करने वालों में सर्व श्रेष्ठ हैं ऐसा—अयोध्याकाण्ड अ० ५२ श्लोक १ तथा सुन्दर काण्ड - २७ के २५ में तथा उत्तरकाण्ड ४२ के २१ में कहा है। और भी बहुत जगह कहा है ऐसा शब्द अन्य किसीको भी कहीं नही कहा गया है। यहा तक कि आचार्यने—

यश्चरामं न पश्येत्तुयं च रामोन पश्यति ।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते ॥

इस वाल्मी० अयो० सर्ग १७ श्लोक १४ जो श्रीरामजी को नही देखता है जिस को श्रीरामजी नहीं देखते हैं वह मनुष्य सर्वलोक में निन्द्य है और उस मनुष्य की आत्मा भी उसकी निन्दा करती है अतः श्रीरामजी को अपने आत्मा के अन्दर देखलेना अत्यन्त जरूरी है ऐसा विचार करके ही यह "श्रीमाधुर्य केलिकादम्बिनी" नामक ग्रन्थ लिखने का परिश्रम किया है। इस ग्रन्थ में आत्मा को परमात्मा की प्राप्ति कैसे होती है यह साफ दर्शादिया गया है आत्मा सुख चाहता है, सुख इन्द्रियों द्वारा नहीं मिल सकता है।

सुख मात्यन्तिकंयत्तद् बुद्धिग्राह्य मतीन्द्रियम् ।
वेत्तियत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

गीता० अ० ६ श्लोक २१

अतिशय जो सुख है वह इन्द्रिय गम्य न होकर बुद्धि से ग्रहण किया जाता है। जिसको जाननेपर फिर यह आत्मा उस श्रीराम तत्वसे विचलित नही हो सकता है इस श्रीरामतत्व के लिये आत्मा सुखप्राप्त्यर्थ मनुष्य को गुरू की शरण में जाना जरुरी है; क्योंकि गुरु से दो फायदे हैं एक तो बुद्धियोग का धर्म गुरु द्वारा मिलेगा जो सब धर्मों में अनन्त जन्मों के कर्म बन्धनो का मुख्य अंग संचित कर्म है, उस संचित को शरणागति धर्म देकर मिटा देंगे। जिस धर्म को गीता अ० ९-३ में—अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्यु संसार वर्त्मनि अर्थात् इस शरणागतिधर्म में श्रद्धा न होने से जीव संसार मृत्युसागर में गिर जाता है भगवान को नही प्राप्त कर पाता है।

शरणागति का स्वरुप

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन। गी० अ० १८ श्लोक ६२ में सर्वभाव से उन उत्तम पुरुष के शरण जाओ ऐसा आज्ञा होने पर अर्जुन चक्काचौंधी में पड़ गये कि किधर जाऊँ तब भगवान कहते है कि—"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"—अर्थात् अपनी स्वतन्त्रता का लोक धर्म, शरीरधर्म, जातिधर्म सब छोड़कर मैं जहाँ एक हूँ उसकी शरण में जाओ क्योंकि मैं परमात्मा का धाम हूँ—ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहं गीता अ० १४ श्लोक २७ में लिखा है कि मैं उस परमपुरुष परमात्मा ब्रह्म का निवासस्थान एवं दिव्यधामहं। वे प्रेरक है। उन की प्रेरणा से मैं उदासीन की तरह से जगत व्यापार भी करता हूँ मैं अधिष्ठान हूँ वे प्रेरक हैं। उन परमात्मा की इच्छा दैव है जीवों पर दया आदिगुणों को प्रकाशित करना यह रामत्व - रमणाशीलता चेष्टा है। इस प्रकार से आत्मा व परमात्मा जड़माया द्वारा प्राकृतव दिव्य लीला तथा दिव्यधाम को प्रकाशित करते हैं इसमर्म को जाननेवाला ही कृपापात्र कर्म बन्धन से मुक्त हो सकता है। यह बुद्धियोग कहा जाता है। इस बुद्धियोग द्वारा सेव्य सेवक भाव से दिव्यधाम का तुरीयावस्था में अनुसन्धान इस प्रकार करें कि कोटिसूर्य सम प्रकाशमान तेजमण्डलमध्य सहस्रदल अरुण कमल हैं प्रतिदल दिव्य अनन्त ऐश्वर्य विचित्र शक्तियों का प्रभाव मय अनन्त विष्णु रूपों की लीला विस्तार मध्य चार मुख्यदलों में महाविष्णु वासदेवलोक गौलोक रमावैकुण्ठ रूप चार दलों के मध्य कर्णिका में शाकेत धाम दिव्य वन पर्वत नदियों द्वारा घिरा हुवा सच्चिदानन्द मय दिव्य सृष्ठि में सभी दृश्य सुन्दरता सत लक्षण जान, प्रकाश, आनन्द मय पशु, पक्षि, लता, वृक्ष सब आनन्दमय ही हैं। जहाँ इच्छा मयदेही देह विभाग रहित सभी दृश्य परोक्ष में ईश्वर की इच्छा पर प्रेरित हैं और प्रत्यक्ष में भगवान के भक्तों की रुचि पर चलना दिव्य गुणसागर लीला धाम रूप विविधनामों से परमात्मा का महाऐश्वर्य के भोतर महामाधुर्य का दर्शन करें यह भगवत धाम सच्चिदानन्द है जिसका वर्णन वेदों में तो - त्रिपादूर्ध्व मुदैत्पुरुषः आदि शब्दों से है ही। महाभारत शान्तिपर्व में भी भीष्मजी ने युधिष्ठिर को बताया—महाभारत शान्ति अ० २२२

हिरण्य सद्नं ज्ञेयं समेत्य परमंपदम् ।
आत्मना ह्यात्म दीपं त आत्मनि ह्यात्मपुरुषः ॥ ३६ ॥

अर्थात्—बुद्धि के द्वारा आत्मा के भीतर में परात्पर परम्पद हिरण्य सदन (कनक भवन) जानने योग्य है जो हिरण्यसदन आत्मा के भीतर ध्यान करने पर दिव्य ज्ञानका प्रकाश करता है तो आत्मा के भोक्ता परमात्मा प्राप्त होते हैं। उस अवस्था में अनन्त पार्षदों के साथ रमण करते हुवे श्रीराम रूप में आद्याशक्ति श्रीसीताजी की महिमा दिख पड़ती है। इस प्रकार उपासक को भगवत कृपाका जो आनन्द मिलता हैं उसका अनुभव प्रत्यक्ष इस ग्रन्थ में आचार्य ने दर्शन कराया है। जो भगवत शरणागतों को ही केवल प्राप्त है जैसा कि गीता अ० ११ श्लोक ५४

भक्तया त्वनन्यया शक्यं अहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं चतत्वेन प्रवेष्टुंच परन्तप ॥ ५४ ॥

अनन्या भक्ति के ही द्वारा मेरा ज्ञान व दर्शन व मेरे में प्रवेश हो सकता है, और उपाय नहीं है ॥

आत्मा का परमात्मा में प्रवेश हुवे विना कहीं भी सुख शान्ति नहीं है अर्थ धर्म काम मोक्ष सब दुःखदाई ही है केवल अंश आत्मा का अंशी परमात्मा में प्रवेश ही एकमात्र सुख समुद्र में प्रवेश होना है इस संसार में केवल काम विषय भोग ही खराब नही है प्रत्युत अर्थ धर्म और मोक्ष भी खराब ही है क्योंकि परमात्मा ने जगत रचना किसलिये किया ? यह बात परमात्मा की कृपा से ही जानी जाती है परमात्मा की कृपा आश्रितों पर ही होती है आश्रित अनन्त जन्नों के भगवत धर्म सम्पर्क से हुवा जाता है भगवत धर्म को लोक धर्म की आत्मा समझना चाहिये जैसे शरीर से वैराग करके आत्मा को परमात्मा से योजित करना विधान है वैसे ही पहले लोक धर्म पालन पूर्वक शरणागत हो फिर लोक धर्म को त्याग कर भगवत धर्म को अपनाने की आवश्यकता है इसी भावपर गीता अध्याय १८ श्लोक ६६ में कहा गया है कि "सर्वधर्मा-न्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" अर्थात शरीर सम्बन्धी लोकधर्म को त्याग कर में जहाँ एक हूँ उनकी शरण में जाओ मैं तुम को पापमय लोक धर्म को

छुड़ाकर शरणागति धर्म देऊँगा तो तुमको गुरु आज्ञा पालन करने से कोई पाप स्पर्श नहीं कर सकैंगे क्योंकि मै भगवत धर्म स्वरूप गुरू हूँ तुम मेरे कहने पर काम करो तो तब सेवक का किया कर्म स्वामी को लगता है अतः मैं गुरू हूँ तुम चेला बनो एसो कहा गया है। यदि एसा अर्थ न करैंगे तो तब गीता अध्याय ९ श्लोक ३ का

अश्रद्धधानाः पुरूषा धर्मस्याश्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्यु संसारवलीनी॥

अर्थात् इस शरणागति धर्म में श्रद्धा न रखने पर तुम चौरासी लाख योनी चक्र में पड़ जाओगे और इस शरणागति धर्म के प्रभाव को समझो कि गीता अध्याय २ श्लोक ४० में

नेहाभिक्रम नाशोस्ति प्रत्यावायो न विद्यते।
स्वल्प मप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

अर्थात् इस शरणागति धर्मका किंचित स्पर्श भी नर्क से बचाता है फिर भजन कृत्य अक्षय होते हैं विघ्नबाधाभी भजन करने वाले को स्पर्श नही करती है—भगवत धर्म सीपी बनकर निर्गुण निराकार आत्मा स्वाती का पानी बन कर यदि गुरू स्वाती नक्षत्र के मेघ बनकर शिष्य करैंगे तो तब निर्गुणनिराकार चेतन शक्ति स्वरूप आत्मा परमात्मा के सदशरूप गुरु मन्त्र के प्रभाव से बन जायगा फिर जैसे पानी का मोती बनने पर फिर पानी नही बन्ता है वैसे ही भगवत रूप हुआ आत्मा फिर सत्यशंकल्प मयस्वरूप से परमात्मा का पार्षद हो जायेगा जो रूप चाहेगा सो रूप हो सकेगा यदि केवल परमात्मा के लिये अपने को निश्चय करेगा तो ऐसी स्थिति में परमात्मा भी इसी भक्त के लिये अपने को निश्चय करैंगे। यह भगवान का भाव वश्यता है जैसा कि गीता अ० ४-११ में लिखा है—ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैवभजाम्यहम्।

————

श्रीमन्मैथिलीप्राणवल्लभो विजयते ।

श्रीमती सर्वेश्वरी श्रीचारुशीलायै नमः

श्रीमन्मारुत नन्दनाय नमः ।

श्रीमतेरामानन्दाचार्याय नमः

श्रीसद्गुरवे नमः ।

श्रीमन्मधुररसाचार्याय, श्रीमधुराचार्याय, श्रीरामप्रपन्नाचार्यायनमः

श्लोक—वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एवच ।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णावेभ्यो नमो नमः ॥

॥ प्रेमी भक्तों की वन्दना ॥

वन्दे श्रीराम पादाब्ज रसास्वादन तत्परान् ।
निदानाज्ञानकी राम शक्ति कल्प तरोः शुचीन् ॥१॥

अर्थ :—ग्रन्थकार वन्दना करते हैं कि श्रीसीताराम जी के भक्तिरूप कल्प वृक्षके पवित्र कारण (अर्थात् गुरु परम्परासे ही भक्ति प्राप्त होती है) और श्री युगलसरकार के चरण कमल के रस आस्वादन में सावधान एसे भक्तजनों को नमस्कार हो (श्रीगुरुद्वारा ही प्रपत्ति प्राप्त होती है इसबात को आगे बताते हैं)

भक्तेः प्रपत्तितो वापि नान्यो पायोर्गस्त देहिनाम् ।
ताभ्यां दाशरथी रामो वशी भवति राघवः ॥२॥

अर्थ :—शरीर धारियो के लिये भक्ति अथवा प्रपन्ति के सिवाय संसार से पार होने का कोई उपाय नही है। भक्ति और प्रपन्ति के द्वारा ही प्राणी मात्र में रमण करने वाले श्रीचक्रवर्ति कुमार श्री राघवजी वशमें हो जाते हैं। (वह भक्ति क्या है इस बात को आगे बताते हैं)

साचोत्तमा भवति भक्ति रनन्य हेतुः ।
प्रीतो भवेत्तु मिथिलेश सुतावरेयम् ।
ते चोत्तमा जगतिनैव फलं कथञ्चिद्
वाञ्छन्ति रामपद भक्ति रसाब्धिमिनाः ॥३॥

अर्थ :—अनन्यता है मूलकारण जिसमें, वही उत्तमा भक्ति है। जिससे श्री जानकी वल्लभजु अति प्रसन्न हो जाते है, वही अनन्या भक्तिवाला भक्त श्री सीताराम चरण भक्ति रस समुद्र की मछली बना हुआ उत्तम है, वही भक्तलोक में किसी भी फल की कामना नहीं करता है। (इस श्लोक में अनन्या भक्ति और निष्कामता की विशेषता दिखाई है।)

सीतापतेर्मधुर काव्य रसाब्धिपुर,
संचार मानस झ' रस राजमूर्तेः।
कुर्वीततंवशमहो व्यवहारतोऽपि,
तोयंन्न मुन्यति झर्ष न झषोऽपि तोयम् ॥४॥

अर्थ :—रसराज श्रृंगारस के मूर्ति रुप श्री जानकी वर के सुमधुर रस से भरा काव्य समुद्र में जिस भक्त का मन मीन बन गया है। वह भक्त प्रारब्ध व्यवहारानुसार लोक में रहता हुआ भी आश्चर्य है कि वह भक्त श्री सीताराम जी को वश में करलेता है। एसी स्थिति में यह युगलसरकार का आनन्द रस समुद्र भी उस भक्त को नही छोड़ता है और वह भक्त को भी इस रस समुद्र के बिना कहीं चैन नही मिलता है।

सीतापत्ति च सुगुरूं मुखतोव्रवीति,
सीता सुधा रसपयोनिधि वीचि मीनं।
स्वाङ्के निधाय बहुपश्यति रामचन्द्रं,
वेदार्थ सार मनुनेत्र चकोरतस्तम ॥५॥

अर्थ :—जो भक्त श्री सीताजी रुप अमृत रस समुद्र के मध्व मीन सदृश बिहार करने वाले और जो वेदों के सारभूत श्री रामचन्द्र जी हैं उनको स्वरुपसे तो अंक में धारण करते हैं और सुन्दर नेत्रों से चकोर वत्त श्री सीताराम जी को देखते हैं और मुख से श्री सीतारामजी के और सद्गुर के नामों का उच्चारण करते हैं। वेही भक्त चकोर वत इश रसको प्राप्त करते हैं।

वेदान्पुराणमिति हासकथां व्रवीत,
ज्ञानादि साधनपरोऽपि पुमान्प्रवीणः।
मो चेत्करोति रमणं वशवर्तिनंवै,
रामं शरण्यमपि तस्य हि दुःख मेव ॥६॥

अर्थ :—जो विद्वान या चतुर पुरुष वेद पुराण इतिहासादी कथा प्रवचन भी करता है। ज्ञानादि साधनपरायण भी रहता है, किन्तु श्रीराम जी में जो अपनेमें रमण करने वालों के वश में रहते हैं उन श्रीराम जी के शरणागत वत्सल होते हुए भी (शरणागत हुए बिना) उस विद्वान प्रवीण के लिए दुःख ही है ॥ ६ ॥

(अतः इसस्थिति में आचार्य की आज्ञा है कि)

शुचि श्रीराम माधुर्य्य कादाम्बिन्याः सुसिञ्चतम् ।
वर्धयेत् शततं धीमानभक्ति कल्प महीरुहम् ॥ ७ ॥

अर्थ :—श्रीरामजी के पवित्र माधुर्य रस रुप मेघमण्डल से सुन्दर सिंचा हुआ भक्ति रुप कल्पवृक्ष को बुद्धिमान पुरुष अपनी हृदय रुपी भूमि में हमेशा बढ़ावें।

(कैसे बढ़ावें, यह बात आगे बताते हैं)

सीतासूर्य मरीचि कौक मधुरं श्री कोशलाधीश्वरम् ।
पंक्ति स्यन्दन सुनुमेव परमोपायं विदध्यात् सदा ॥
भक्ता नन्दकरं गुणार्णवमहो पश्यद्रते कामिनम्,
गायन केलि कलाप मस्य सततं श्री जानकी संयुतम् ॥ ८ ॥

अर्थ :—अहो, आश्चर्यमय कामदेव रति के साथ जैसे विलास करता है उसी तरह भक्तों के आनन्द को विस्तार करने वाले दिव्यगुणों के समुद्र तथा श्रीसीता रूप सूर्य के सौन्दर्य रूप किरणों को पान करने के लिये मधुर चक्रवाक सदृश्य श्री चक्रवर्ति कुमार श्री कोशलाधीश्वर श्री रामजी को श्री किशोरीजी के साथ हमेशा परं उपाय के रूप में ध्यान करें, और इन्ही युगल सरकार के माधुर्य बिहार चरित्रों का गुणगान करें।

(आगे आत्मा और परमात्माके नित्य निवास स्थान को बताते हैं)

श्रीसाकेतपुरं रसैक निलयं माया गुणैर्वर्जितम्,
नाना केलिकलाप भोग मधुरं वन्दे निधीशश्रिहम् ।
नाना दिव्य मृगद्विजालि ततिभिः शोभाय मानं मुदे,
तद्भुयात्सुधियां निरन्तर महो भूयान्न वन्छापरा ॥ ६ ॥

अर्थ :— अद्वितीय रसका निवासस्थान श्री साकेत धाम को नमस्कार हो। जो माया के समस्तगुणों से रहित है और दिव्य गुणों के समुद्र है। जिसमें नाना प्रकार के सच्चिदानन्दमय दिव्य मृग, पक्षी भ्रमर आदि सुमधुर अनेक भोग विलासोपयुक्त सम्पति विस्तार है और अत्यन्त शोभायमान है। जहाँ के भोग माधुर्य को अन्य समस्त ऐश्वर्यों का अधिपति चाहते हैं। इसप्रकार का आश्चर्यमय श्री साकेतधाम है वह कि सुन्दर बुद्धि वाले सज्जनों के लिए निरन्तर आनन्द प्रद होवै। जिससे फिर और कोई कामना वाकी नही रहती है।

(श्लोक ९ के अर्थ में) साकेत का अर्थ—(प्रथम)

सम् सम्यक् आसमन्तात् के तयति निवसति सीतयासह श्रीरामोयस्मि-न्निति विग्रहे - सम् आङ्ग उपसर्ग पूर्वक निवासार्थक कितधातोः हलश्चेति सूत्रेणाधिकरणेऽर्थेघम् अनुबन्धलोपे लघुपदगणे पृषोदरादित्वात् समो मलोपे कृदन्तत्वत् प्रातिपदिकत्वात सौरुत्वे विसर्गे च साकेत इतिसिद्धम्॥

अत्र सम्यकत्वम् वासस्य त्रैकालिक वाधशून्यत्व रूपम् समन्तात्त्वञ्च सर्वावयव व्याप्तिरूपम्।

अतः त्रिकाले सर्वावयव व्याप्त्या यत्र भगवान श्रीरामो सीतयासह निव-सति स साकेत - इति सिद्धम्॥

जिस स्थलमें सर्बाबयव में सर्वदा श्री सीताजी के सहित भगवान श्रीराम जी विराजमान रहते हों वह साकेत (एकान्त) स्थान है।

वन्दे सखि समाजंतं प्रेम रज्वावशीकृतम्।
बबन्ध क्रीड़ मानं यो श्री रामं रस सागरम्॥ १०॥

अर्थ : उस सखी समाज को नमस्कार हो जिस सखि समाज ने रससागर में विलास - कौतुक करते हुए श्रीरामजी को प्रेम रूपी रस्सी से बाँध कर अपने बश में कर लिया है।

यासां भ्रमरवन्नित्यं भूत्वाभुमति राघवः।
चित्तेषु फुल्ल कञ्जेषु काननेषु मुहुर्मुहुः॥ ११॥

अर्थ : जिस सखी समाज के खिलेहुए कमल के सदृश्य चित्तरूपी बनमें श्री राघवजी भ्रमरवत होकर नित्य, वारम्बार विहार करते हैं॥११॥

श्रीजानकी चरणचारण चारू भृङ्ग्यः

सख्यः प्रमोद मुदिताः रघुनाथ रूपम् ।

निर्मन्छन्तीन्दु मुखपक्ष्म कटाक्षपातैः

माधुर्य पान निरताः मुमुहुः स्मभूयः ॥ १२ ॥

वह सखीवृन्द श्रीजानकीजी के चरण कमल की सुन्दर भ्रमरी होकर श्रीरघुनाथ जी के रूप को अवलोकन कर परमानन्द मग्न होती हुई युगल सरकार के माधुर्य रसस्वादन आसक्ति से अतिशय विमोहित होकर अपने दिव्य मुखचन्द्र के दिव्य कटाक्षपातों से अपने को न्योछावर करती हैं ।

पश्यन्त्यो रघुनाथकस्य सरसं रूपंविधेर्मोहनम्,

सख्याः श्री जनकात्मजा सुसुषमा श्री माधुरीनिर्जिताः ।

सीतायाः शुभगा निरीक्ष तरसा धारेतिलीनेति च,

ब्रूते कापि जयन्ति तत्र सुदृशा चाटूक्तयस्संस्पृहम् ॥ १३ ॥

अर्थ :—पुनः वे अलिवृन्द विधाता को भी मोहित करनेवाले श्री रघुनाथ जी के अत्यन्त रसीले रूप को देखती हैं फिर श्री जनकात्मजा को देखती हैं तब श्री सीताजी की परम शोभा और अतिशय श्री माधुरी को अवलोकन करते ही वे सब जीत ली गयी (अर्थात स्नेह विभोर होकर सुध-बुध खो गयी) तब कोई सुन्दर नेत्रवती सखी श्रीसीताजी की इस सौभाग्य मय अधिक सुन्दरता को देखकर अत्यन्त हर्ष व अभिलाशा को वढ़ाने वाले चुटकीले शब्दों से - क्या यह कोई रस की धारा है ? और ये सब क्या रसकी धारा में डूब गयी हैं ? ऐसा कहकर अत्यन्त तरस में आकर जै - जयकार हो, ऐसा कहा ।।१३।।

कृत्वाङ्गानि यथा प्रदेश मलशन् तौदम्पति तल्पके,

रामः श्री जनकात्मजा सुशयाते तो भोगदौ पश्यताम् ।

प्रायो विश्वजय प्रयास जनित क्लेशाद्दढ़ं कान्तया,

कामो राजमण्णीद्र रामभवने भोगाधिकेऽसौमुदे ॥ १४ ॥

अर्थ :—श्री जानकीजी के साथ श्री रामजी सुन्दर पलङ्ग पर सुखपूर्वक शयन करते हैं । प्रत्येक अङ्गो को यथा स्थान में मिलाये हुए सुशोभित हैं । कोई सखी कहती है, हे सखी ? सब को सुखभोग देनेवाले इन दोनों दम्पति

को देखो। मानों विश्व विजय के प्रयास से, अति क्लेश्रित हुए रति के सहित कामदेव अपने आनन्द के लिए राजमणीन्द्र स्वरुप श्री रामजी को इस भोग की अधिकता में सर्वश्रेष्ठ भवन में वे दम्पति विराजमान होकर शयन किये हैं ॥१४॥

दम्पत्योर्मुखचन्द्रकान्ति निवहं पश्यन्ति रामाभृशम्।
तृप्तिं नैव तु यान्ति लोल नयनै र्निन्दन्ति राका मृतम् ॥
मन्ये तत् स्वाधिकं रसानु भवता नोचेंत् कथं तत्पुरः,
तृष्णा वृद्धि रहो विचित्र मथवा श्री राघवे रागितम् ॥ १५ ॥

अर्थ :—सखियाँ युगल सरकार के मुखचन्द्र की कान्ति को प्रेम पूर्वक देख रही हैं। वे तृप्त होती ही नहीं। चञ्चल नेत्रो से शरद - पूर्ण - चन्द्र के अमृत को तिरष्कार करती है मालुम पड़ता है कि रसानुभव में शरदचन्द्र से दम्पति मुखचन्द्र की शोभा अधिक है। यदि ऐसा नहीं होता तों प्रिया प्रीतमजू के मुख-चन्द्र अवलोकन में तृष्णा क्यों बढ़ती जाती। अहो यह विचित्रता है कि मानों शोभा ही श्री प्रिया प्रितमज्यू में अनुराग करती है।

काप्यंगमर्दनरता चिबुकाधरेषु गण्डेषु वीक्ष्य रति चिह्नयथोत्तरेण,
वस्त्रेण साधु हरते प्रिययोः ससाङ्कं स्निग्धा विशाल नयना सरसा सुरम्या ॥ १६ ॥

अर्थ :—कोई विशाल नेत्रवाली स्नेहवती सरस हृदय की रमणी या सखी प्रियाप्रितमजू अंगमर्दन करती हुई दोंनों सरकार के चिबुक, अधर, और कपोल के विलास चिन्हों को देख कर उत्तरीय बस्त्र से दम्पति की स्नेह-निद्रा में कोई वाधा नहीं ऐसा सोच कर हलके हाथ से सुन्दरता पूर्वक चिन्हों को मिटा देती है।

विभ्रशितानि रति खेल सुखेनतानि,
सम्भूषणान्यवयवाः सिथिलास्समाजाता।
वायुर्ववौ परिमलं स्फुरयन्तु सीतं,
मोदं ययुः सरस मालिगणाति भृंग्यः ॥ १७ ॥

अर्थ :—विलास कौतुक के सुखसे अंग-प्रत्यंगो के भूषण शिथिल हो गए, शीतलमन्द सुगन्ध बायु बहने लगी, इस शातलता से सखीगण और भौंरें भी अत्यन्त अनुराग से भर गए ॥१७॥

दम्पति मधुरकान्ति मण्डलाद्बिम्बितं मणिमयञ्च मन्दिरम ।
वीक्ष्य तन्मुखसरोज सौरभं लिल्युरेव सुषमा पराजिता ॥ १८ ॥

अर्थ :—दिव्य मणिमय महल में युगलसरकार के श्री विग्रह के शोभा प्रकाश से मण्डल प्रतिबिम्बित हो गया। उस प्रतिबिम्ब के श्री मुख कमल की सुगन्ध को पाकर और इस दृश्यको देख कर परम शोभा पराजित होगयी ॥१८॥

वीक्ष्य वीक्ष्य विकुरङ्ग वालकान् मोहितान्मधुर रूप सम्पदा ।
कुर्वन्ते च त्रिण भञ्जनादिकम् रक्षणाय विवुधार्चनं तयोः ॥ १६ ॥

अर्थ :—सखियों इश प्रतिबिम्ब शोभा के विस्तार से मृग शावकों को मोहित होते देख कर दोनों दम्पति को कहीं नजर न लगजाय, इसलिए तृण तोड़ना, राइलोन उतारना देवार्चन आदि कृत्य करने लगी।

सीता लतायुक्त महं भजेतं ।
श्रीराम मन्दार तरूं सुचेतम् ॥
सम्भोग चिह्नानि कुसुमै रूपेतम् ।
सम्भोग सुव्यक्त फलैः समेतम् ॥ २० ॥

अर्थ :—सम्भोग के चिह्न रूप दिव्य पुष्प जिसमें खिले हों, और प्रत्यक्ष सम्भोग रूप फलों से जो युक्त हो एसी भी सीता रूपी दिव्यलता से युक्त श्री रामरूप चैतन्य कल्प वृक्ष का, कबि कहते है, मैं भजन करता हूँ ॥२०॥

अङ्गानिनाना सुरभीनिसं स्पृशन् ,
नौयाति वासेषु समीरणोति।
अलीगणो भृङ्गगाणो पियाति,
त्यक्त्वा गृहाण्यन्य मसतू करोति ॥ २१ ॥

अर्थ :--वायु युगल सरकार के अङ्ग से उद्भूत सुगन्ध को स्पर्श करके फिर अन्य महलों में नहीं जाता है। इसी प्रकार सखियाँ और भौंरे भी दोनों

दम्पति को नही छोड़ सकते हैं। वे वहीं पर निरन्तर रहते है। प्रिया-प्रितमजू जिस महल में न हों वह महल असतकर होता है। अतः वे युगल सरकार को नहीं छोड़ते हैं ॥२१॥

याता युता ज्ञात निशावसाना,
याताशु तद्रूप समुद्र मीना।
याता वनावास मति प्रवीणा,
यातातिं माङ्गल्य समूह लीना ॥ २२ ॥

अर्थ :—प्रातः काल युगलसरकार को जगाने के समय उन प्रियाप्रितमजू के रूप समुद्र में मछली बनी हुई सखियाँ को १० हजार प्रातः काल का समय अज्ञात अवस्था में चला गया, अत्यन्त चतुरी उन सखियों के मङ्गल कृत्यों के समूह बन कुञ्जों में भी समय चला गया।

लक्षैः समायान्ति च राजकन्या,
गन्धर्व पुत्र्यो द्विगुणा स्ततोऽपी।
सीताक्षिती शात्मजवारि वाह,
सारंग्य आनन्द सुधाब्धिमीन्यः ॥ २३ ॥

अर्थ :—इस प्रकार युगल सरकार के शयन-कुंज में कनक भवन की लाखों राज्यकन्यायें इन से दुगुनी गन्धर्व कन्यायें जो आनन्द समुद्र की मीन हैं प्रियाप्रीतम रुपी मेघ मण्डल केलि मयूरीवत हो गयी हैं अर्थात् नृत्य करती हुई आ रहीं हैं ॥२३॥

सुकेलि कुञ्जाँगण संस्थितासु,
नोमाति कुञ्जाङ्गण रूपतासु।
झरन झरन सा वहिरागतासु,
दिशा सुरम्या सरितासु तासु ॥ २४ ॥

अर्थ :—श्री युगल किशोर के विलास कुंज के आंगन में खड़ी उन मयूरी-वत नृत्य करती हुई सखियों में युगल रूप सौन्दर्य उनके हृदय में और उस आँगन-कुञ्जो में नहीं अमाया तो दरवाजा खिड़की झरोखाओं से झर-झर

कर (निकल-२ कर) बाहर समस्त दिशाओं में रमणीयता छा गयी (अर्थात् वह रूप सौन्दर्य और दिशायें भी सच्चिदानन्द होने से हृदय, कुञ्ज वन, दिशाओं में सौन्दर्य प्रति विम्बित हो गया ।) ॥ २४ ॥

मुखाब्ज सौगन्ध सुगेय ताभिः,
सदागति श्चाप्युपयाति शोभी ।
स्मितास्य जागर्ति मनोहरिर्णा,
कान्त्याऽलि पंक्ति सहसाति रम्या ॥ २५ ॥

अर्थ :—उन सखियों के द्वारा युगल सरकार के सुकेलि के बिमल गान करने से और उनके मुख कञ्ज के सुगन्ध से वायु भी अति सुशोभित हुआ । श्री युगल सरकार भी उस सुगान को सुनकर मन्द-मन्द मुसकुराते हुए जग गये । उस मुसकान की शोभा जनित कान्ति से वे मनोहारिणी सखियों की पंक्तियाँ सहसा अति रमणीया हो गयी (अर्थात् वियोग जन्य दुःख से व्याकुल हुई थीं, दर्शन होते ही प्रसन्नता छा गयी ।) ॥ २५ ॥

मन्दमन्द मिदमेव नोच्चकै,
र्गानमाशु कुरुतां मनोरमा ।
दम्पति सरस तल्प संस्थितौ,
नो भवेप्रसपराभवस्तयोः ॥२६॥

अर्थ :—अनुराग में उमग कर सखियाँ जब जोर से गाने लगी तो कोई मुख्य सखी उनको रोकती हुई कहती है कि हे मनोरमाओं धीरे-धीरे मधुर गान करो, जोर से मत गाओ क्योंकि दोनों दम्पति पर्यङ्क विलास से अभितृप्त नहीं हुए हैं अतः उनको विलास में बाधा नहीं ॥ २६ ॥

सैत्रर्गणै रसमञ्जर्यो,
वर्षन्ति कुसुमास्थलम् ।
मूर्तिमत्यस्समायाता
रत्यः कामसारानिव ॥ २७ ॥

अर्थ—मञ्जरी अवस्था वाली सखियों का समूह पुष्पों की वर्षा करता हुआ युगल

सरकार के पर्यंङ्क के समीप में आया। मानों अनन्त रतियाँ काम के बाणों की वर्णन करती हों, ऐसा प्रतीत होता है। ॥ २७ ॥

आगतायुत मञ्जर्य्यश्चकान्यद्भुतानिच।
भृङ्गारकानिचानीय 'कूजद्भ्रमर' कोकिलैः ॥ २८ ॥

अर्थ :—दश हजार मञ्जरी सखियाँ अद्भुत् दिव्य मिठाइयों से भरी तस्तरियाँ और सुस्वादिष्ट जल से भरी झारियों को लेकर कोकिल कंठ से भ्रमर की तरह गीत गाती हुई आईं ॥ २८ ॥

स्व भाषा रूप मञ्जर्यो मुखाब्ज कीरणोत्कीराः।
भावयन्त्यौ हि भवनाम्युडुभिः खमिव चन्द्रमा ॥ २९ ॥

अर्थ :—सभी मञ्जरी सखियाँ अपनी मुख सुन्दरता से दिशाओं को प्रकाशीत कर रही हैं, मुख कंज की कीरणों से उस शयन कुंज महलों को वैसे ही प्रकाश दे रही हैं। जैसे तारा मण्डल से युक्त चन्द्रमा आकाश को प्रकाशित करता है ॥२९॥

आयाता ऋतुभि स्समं सुरभिना वातेन स्रंसत कचाः।
मन्दाक्रान्त लसत्सरोज नयनाः कामातुरे राघवे ॥
गायन् कोकिल काकली सुमधुरं किम्वापि कामो'मुदे।
दम्पत्योः पटहं धुनोति सुकलं सर्वेस्वकै रागतः ॥३०॥

अर्थ :—विलासासक्ति में विराजे हुए दोनों सरकार के पर्यंङ्क पर समस्त ऋतुओं के सुमन सुगन्धों से सुगन्धित वायु द्वारा हिल रहे हैं, सिर के बाल जिनके और कमल के सदृश हैं नेत्र जिनके तथा अपने स्वर से कोयल के स्वर को तिरष्कार करती हुई मन्द-मन्द गति से चलती हुई और सुमधुर गीत गाती हुई कामोन्मादक पटह आदि बाजाओं के सुनिनादों से विविध राग रागिनियों को प्रगट गायन करती हुईं असंख्य सखियाँ आईं ॥ ३० ॥

गणैस्तुगणमञ्जर्य्यः खञ्जनद्वय संयुताः।
चक्रवाक द्वयायान्ति लाड़नाय तयोः किमु ॥ ३१ ॥

अर्थ :—अनेकों यूथेश्वरियों के साथ मञ्जरी अवस्था की सखियों के समाज मी दो-दो खन्जन और दो-दो चकवा चकवी को प्रत्येक सखी अपने हाथों में लेकर

युगल सरकार के समीप में आईं, मानों युगल दम्पति के लाड़-प्यार के लिये खीलौना लेकर आई हों ॥ ३१ ॥

संयान्ति रति बर्धिन्यः क्वाङ्गै शृङ्गार वर्धकैः।

ताम्बूला गरु कर्पूर पद्मचन्दन मण्डिताः ॥३२॥

अर्थ :—सखियाँ अपने अंगों में शृङ्गार रस वर्धक चन्दन आदि सुगन्धों के लेप करके तथा ताम्बुल से अधर को रञ्जित कर अनेक प्रकार भूषित हो कमल वत हाथों में कमलों को लेती हुई युगल सरकार के अनुराग को बढ़ाती हुईं दोनों दम्पति के समीप में आईं ॥ ३२ ॥

विधाय पौरुषं रूपं सुरम्या केलि कोविदाः।

कोक केकि षडूअङ्गादै पुष्प स्रक कन्दुक द्वयाः ॥३३॥

अर्थ :—क्रीड़ा विलासों की मर्मज्ञा कोई सखी सुरमणीय पुरुष रूप को धारण कर पुष्प माल्यादि से भूषित होकर चकवा, चकवी मयूर और भ्रमर आदि को लेकर तथा दो गेन्दो को लेकर आयी। ॥ ३३ ॥

नाना सुरभी पात्रैश्च युक्ताः सर्वर्तु वस्त्रकैः।

पुन्षा वेषेण संप्राप्ता रत्योः नाना विधाः किमु ॥३४॥

अर्थ :—तथा सुगन्ध से भरे हुए पत्रों को और सभी ऋतुओं के अनुकूल वस्त्रों को को लेकर आई उस पुरुप वेष में भी वे सब वैसे ही लगती हैं मानों बहुत सी रतियाँ अनेक प्रकार के वेष बनाकर आई हो। ॥ ३४ ॥

हास्यप्रवीणा संयान्ति कपोतैक मृगद्वयाः।

केकि द्वय सुकै काश्च कलभ द्वय गर्विताः ॥३५॥

अर्थ :--हास्य कलाओं में परम प्रवीणा कोई सखी एक कबूतर को, दो मृगो को, दो मयूरों को, एक शुक को दो हाथी के बच्चों को लिये हुए गर्व के साथ आयी। ॥ ३५ ॥

बाजद्वाया मीन युग्मा हंस सारस संयुता।

तिन्तीरैकाः सुशोभाढ्या नाना पक्षि गणैर्युताः ॥३६॥

अर्थ :—कोई सखी दो बाजों को, दो मछलियों को इसी प्रकार कोई हंस,

सारस संयुक्त तथा कोई तित्तीर आदि अनेक प्रकार के पक्षियों को लिये हुए सुन्दर शोभा सम्पन्ना झुण्ड की झुण्ड सखियाँ युगल सरकार के सयन कुन्ज में आईं ॥ ३६ ॥

विधाय लोकं निश्चेष्टं रूप चातुर्य गर्विताः ।
कृत्वा वहु विधात्मानं रत्यः प्रायः इहागताः ॥३७॥

अर्थ :—रूप चातुर्य की अभिमानिनी उन सखियों ने अपनी विलास कलाओं से सम्पूर्ण लोकों को चेष्टा रहित कर दिया। ऐसा लगता है कि रति ही बहुत रूप धारण करके यहाँ आयी हों ॥ ३७ ॥

विद्य तृगणाश्च संयान्ति मृदङ्गमूरजादिकान् ।
अवादयन्ति विविधान् मण्डु डिम् डिम झर्झरान् ॥३८॥

अर्थ :—कोई सखी मृदङ्ग मूरज आदि बाजाओं को बजाती हुई और कोई डिडिम मण्डु झर्झर आदि बाजाओं को बजाती हुई विद्युत सदृश अपनी अङ्ग कान्ति से चमकती हुई आ रही हैं ॥ ३८ ॥

गायन्त्यः केलि निवहान् प्रिययो रति निर्मलान् ।
संगीतान् नृत्य भेदाश्च कुर्वन्ति परमाद्भूताः ॥ ३६ ॥

अर्थ :—अद्भुद संगीत नृत्य के भेदों को विस्तार करती हुई दोनों दम्पति के निर्मल अनुरागमय केलि समूह को गाती हुई आयीं ॥ ३९ ॥

विष्णोः राम कुमारस्य कर्पादि जयिनोपि च ।
मोहिन्य इव मोहार्थं संस्थिता परमाद्भुताः ॥ ४० ॥

अर्थ :—कामदेव को भी जीतने वाले जो शंकर जी, उनको भी विमोह में डालने वाले जो विष्णु, उनको भी रमाने वाले जो श्रीरामजी उनको भी विमोहित करने के लिये ये सब सखियाँ क्या परम अद्भुत मोहिनी हैं? ॥ ४० ॥

यासां सौगन्ध्य वातेन रूप माधुर्य सम्पदा ।
गान माधुर्य नृत्येन भूषणानां स्वनेनच ॥ ४१ ॥

अर्थ :—जिनके श्री विग्रह से अद्भुत वायु से और रूप तथा माधूर्य सम्पति से तथा गान की मधुरिमा से नृत्य कलाओं से तथा दिव्य भूषणों की

झनकार से ।। ४१ ।।

आसन् वियेतसश्सर्वे खगद्रुम मृगादयः ।

लताश्च तरूणास्सर्वा हर्षिताः क्षुभितन्त्वचः ।। ४२ ।।

अर्थ :—सभी पक्षी, मृग भ्रमरादि और वृक्ष तथा तरूण लताएँ सब हर्ष से रोमांचित होकर अचेत हो गए ।। ४२ ।।

नरा गन्धर्व विबुधा जड़ी भूता स्सहस्त्रशः ।

अन्याश्च कोटिशो यान्ति गणोस्तासां मनोहराः ।। ४३ ।।

अर्थ :—हजारों की संख्या में मनुष्य, गन्धर्व, देवतादिक सभी जड़ी भूत हो गये । इन सखियों की अनुयायी और भी करोड़ों की संख्या में मनोहर सखियाँ आ रही हैं ।। ४३ ।।

काश्चित प्रियस्य वस्त्राणि भूषणन्यदू भुतानिच ।

गृही त्वौपानहः तस्य नाना रत्न मया पराः ।। ४४ ।।

अर्थ :—कोई मनोहरा सखि प्रियाप्रीतमजु के वस्त्रों को और कोई दिव्य भूषणों को तथा कोई वाला युगल सरकार के दिव्य रत्नों से सुसज्जित जूतों को लेती हुई ।। ४४ ।।

काश्चित् पुष्पमये द्वे द्वे धनुषी दिव्य नूतने ।

द्वे द्वे निषङ्ग संगृह्य सम्प्राप्ताः प्रिय मन्दिरम् ।। ४५ ।।

अर्थ :—तथा कोई रमणियाँ सखी दिव्य पुष्प के नूतन धनुष को लेती हुई और कोई दो-दो तूणीरों को लेतो हुई युगल सरकार के सयन कुन्ज में प्रस्तुत हुई ।।४५

बर्हगुच्छ द्वयाः काश्चिन् चामरद्वय मण्डिताः ।

काश्चिच्छत्र द्वयाः काश्चिद्व्यजन द्वय मण्डिताः ।। ४६ ।।

अर्थ :—सुन्दर भूषिता कोई सखी दो मूर्च्छल दो चमर दो छत्र दो व्यंजन लिए हुए सुशोभित हैं ।। ४६ ।।

वीणैकाश्च पराः कान्ताः सूर्य मुख्यैक संयुताः ।

नाना भरण जालाश्च वेण्वेका दर्पण द्वयाः ।। ४७ ।।

अर्थ :—कोई परम सुन्दरी वीणा ली हुई, कोई सूर्य मुखी पंखा ली हुई और

कोई नाना प्रकार के भूषण ली हुई तथा कोई दर्पण ली हुई इस प्रकार दो-दो करके सभी सेवा की साज को ली हुई ॥ ४७ ॥

शोभिता मुरजैर्व्या नानारूप कुमारिकाः ।
इत्थं चतुर्विधेनापि वाद्येन सहिता गताः ॥ ४८ ॥

अर्थ :—कुमारि अवस्था के विविध रूप को सखियाँ कोई मूरज लेकर और कोई तार के चर्म के हवा के कांसे के इस प्रकार चार भेद से अनेक बाजाओं के सहित युगल सरकार के सयन कुंज में आई ॥ ४८ ॥

किंवा शिव जयोद्योगं कुर्वन्ति कुसुमायुधाः ।
किम्वाङ्ग रहितं कान्तं त्यक्त्वा मनसिन प्रियाः ॥ ४६ ॥

अर्थ—क्या यह बहुत से कुसुमायुध कामदेव शंकर जी को विजय करने का उद्योग कर रहे हैं ? अथवा अपने पति को अंग विहीन जानकर अनन्त कामदेवों की पत्नियाँ (रतियाँ) तो नहीं आ गयी हैं ? ॥ ४९ ॥

प्राप्ता काश्चित् ध्वनि स्ताषां कंकणाना तथैवच ।
नूपुराणां ध्वनि श्चापि मधुरा काम बर्धिनी ॥ ५० ॥

अर्थ :—उन सब सखियों के अङ्ग प्रत्यङ्ग के भूषणों नूपुर कंकणादि के ध्वनि जो अतिसुमधुर काम बर्धक है, वह ध्वनि श्री प्रिया प्रीयतमजु के कानों में आई ॥ ५० ॥

रामस्य श्रवणे घ्राणे वायु स्सुरभि रञ्जिता ।
जागर्तिस्म तदा रामः श्रीमान् शृङ्गार सागरः ॥ ५१ ॥

अर्थ :—और सुसुगन्धित वायु से श्री रघुनाथजी की नासिका भी तृप्त हो गयी तब उसी समय अतिशय सुन्दर शृंगार रस के समुद्र श्री रघुवंश मणि श्री रामजी जाग गये ॥ ५१ ॥

मन्द मन्द सखिगान माधुरीं वाद्य मंजुलखं निशम्य च ।
पक्षिणो जनकात्मजा यशो गानुमारभन्नहोऽलि मण्डलाः ॥ ५२ ॥

अर्थ :—सखियों की अतिसुमधुर गायन की ध्वनि और विविध प्रकार के बाजाओं की मनोहर ध्वनि अहो क्या यह पक्षिसमूह और भ्रमरों का झुण्ड श्री जनकात्मजा

जी के यश के गान को आरम्भ कर रहा है ॥ ५२ ॥

मैथिली मुखसरोज सौरभं प्राप राम रसिकस्य नासिका ।
तेन जागरमवाप रघवः कुन्तलाश्च मुखपंकजा वृताः ॥ ५३ ॥

अर्थ :—रसिक सिरोमणि श्री रामजी की नाशिका जब श्री मैथिली जी की मुख-सरोज के सुगन्ध को प्राप्त किया तो उस सुगन्ध से श्री राघव जी जग गये और मुख कमल घुंघराले अलकों से घिर गया ॥ ५३ ॥

मन्मथस्य किमुवा कसा नवा उज्वलैक धर निम्नगाः किमु ।
किं जनोन्मथन मारिक गुहा विश्वजेतु रथवा शिली मुखाः ॥ ५४ ॥

अर्थ :—क्या यह कामदेव के चाबुक तो नहीं है ? अथवा श्रृङ्गार रस के पर्वत से नदियाँ तो नहीं निकली है ? अथवा विश्वजय करनेवाले कोई वीर के वाणों की वर्षा तो नहीं हैं ? ॥ ५४ ॥

लोक ते च रस वल्लरी विधुमुज्ज्व लाब्धि रस सिंचितस्तरुः ।
मुग्ध मन्मथ चकोर युग्मत स्ततसुधा कण झरं पिबन्मुहुः ॥ ५५ ॥

अर्थ :—श्रृङ्गार रस के समुद्र से सीचा हुआ एक कल्पवृक्ष किसी रसमयी लता में खिले हुए चन्द्रमा को देख रहे हैं। अत्यन्त मुग्ध कामदेव के दो चकोर उस चन्द्रमा से प्रवाहित सुधा रस को वारम्बार पान कर रहे हैं।
(यहाँ पर किशोरी जी का मुखचन्द्र ही लता में खिले हुए चन्द्रमा है और कल्प-बृक्ष तथा चकोर रघुनाथ जी के नेत्र हैं।) ॥ ५५ ॥

श्री सीता मुखपद्मस्य भृङ्गो दशरथात्मजः ।
कुरुते मकरन्दस्य पानं धन्योस्मि मन्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ :—श्री सीता जी के मुख कमल के भौंरें होकर श्री चक्रवर्ती कुमार मकरन्द का पान करते हैं ओर अपने को मैं धन्य हूँ ऐसा मानते हैं। ॥ ५६ ॥

सीताप्रती को ज्वल वाटिकायां भृङ्गो महाराज किशोर कोऽयम् ।
दिव्यांग पुष्पा सवपान मतोविघूर्ण दृष्टिमुर्द मातनोत्ति ॥ ५७ ॥

अर्थ :—श्री किशोरी जी के विग्रह रूपी दिव्य श्रृङ्गार रूपी वाटिका में ये श्री चक्रवर्ती कुमार जी भ्रमर होकर दिव्य अङ्ग रूपी अनेक प्रकार के पुष्पों के मकरन्द

को पान करके आनन्द मग्न होकर अनेक प्रकार से दृष्टि को घूमा रहे हैं ॥ ५७॥

आसंसते चाधर दन्त सौख्यमा मालक्ष्य विम्वाधर गंसुमौक्तिकम् ।
स्निग्धौ कपोलौ सुरुचौ सुवर्तुलौ स्वान्ते तृणं त्रोटति दक्षिण प्रियः
॥ ५८ ॥

अर्थ :— अधर और दातों की जो परम शोभा है तथा विम्ब के सदृश अधर पर जो मुक्ता है तथा प्रकाश मान चिक्कन गोल दो कपोलों को देख कर चतुर चुड़ामणि श्री प्रीतमजु अन्तः करण से तो तृण तोड़ते हैं और बाहर से प्रशंसा करते हैं ॥ ५८ ॥

कुर्वन्त्या नन्द संदोह व्याजाज्जनकनन्दनी ।
शतै बयष्ये सरसा लतेव तरुऽलम्बिनी ॥ ५९ ॥

अर्थ :—समान अवस्था वाले अपने प्रीतम रूपी वृक्ष में लता की तरह लिपटी हुई अत्यन्त रसीली श्री जनकनन्दनी जी महान आनन्द के समुद्र का अनुभव करती हुई नीद के बहाने से सो रही हैं ॥ ५९ ॥

पीत्वा धरा सवं ह्य स्यास्स्वादु स्वादू तरं मुहु : ।
तृणं वभञ्ज हृदये श्री रामो रस विग्रहः ॥ ६० ॥

अर्थ :—शृङ्गार रस स्वरूप श्रीविग्रह वाले श्रीराम जी अत्यन्त स्वादिष्ठ से भी स्वादिष्टतम इन प्रियाजु के अधरों का बारम्बार पान करते हुए मन से हृदय में तृण तोड़ते हैं ॥ ६० ॥

किमुसम्पोपरि स्निग्धो जलदो वामलोचने ।
शिवयो स्तरलोहारो राजते किमुकामिनी ॥ ६१ ॥

अर्थ :—सुन्दर नेत्रवती हे सखी देखो तो विद्युत के ऊपर अत्यन्त रसपूर्ण घटा घन सुशोभित हो रहा है ? अथवा दो शिवजी के ऊपर चमकती हुई दिव्य नीलमणि की हार है क्या ? ॥ ६१ ॥

किम्वासुवर्ण शैलस्य सरसस्यो परीस्फुटम् ।
राजते रसराजोयं हर्षयन्नः शुचिस्मितेः ॥ ६२ ॥

अर्थ :—मधुर मुस्कयान वाली हे सखी, अत्यन्त सरस सुवर्ण पर्वत के ऊपर हम

लोगों को आनन्द बढानेवाला यह कोई रस राज तो प्रकाशमान नहीं हो रहा है ? ॥ ६२ ॥

आल्यः पश्यत पश्यत स्फुटतरं स्निग्धे तमाल द्रुम ।
स्कन्धेद्वेकदली तयोस्तु कमल द्वं द्वं स्फुटं राजते ॥
हंसातत्र वसन्ति चापि परितः कूजत्सरोजद्वये ।
पत्रेषु प्रति भान्ति वालविद्युवस्तै श्चापि वंद्यः शिवः ॥ ६३ ॥

अर्थ :—हे सखियों देखो-देखो क्या ही अद्भुद् चमत्कार की बात है कि एक चिकन चमकीले तमाल वृक्ष के कन्धों में दो कदली के वृक्ष हैं और उन के ऊपर दो कमल सुशोभित हैं इनके चारों तरफ हंस निवास करते हुए मधुर कलरब कर रहे हैं और उन कमलों के प्रत्येक दलों में जो वालचन्द्र हैं वे शिवजी को नमस्कार कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

पीत्वा विम्बफला धरासवमहो कोकादिशास्त्रार्थ भूः ।
स्वेद्यं गात्र कचप्रसून लुलितोभालंप्रियः पश्यति ॥
स्नेहासक्तहृदौ तदातुसरसौ विश्लेष भीत्यातुरौ ।
चन्द्रौ शीघ्र समागमेन मिलितौ गाढं विनोदं गतौ ॥ ६४ ॥

अर्थ :—विम्बाफल सदृश अधरामृत रूप मादकता को पान कर कोकशास्त्र के कलाओं की आश्चर्यमय शास्त्रार्थ की भूमी दोनों दम्पति के श्री विग्रह में पसीना निकल आया। प्रीतमजु प्रियाजु के सिर के वालों से बिखरे हुए पुष्पों को देखकर स्नेहासक्त होकर वियोग जन्य भय से आतुर होकर हृदय से हृदय को और मुखचन्द्र से मुख चन्द्र को मिलाकर अत्यन्त विनोद पूर्बक गाढ़ाआलिंगन को प्राप्त हुए ॥ ६४ ॥

निपीय रूप माधुरीं मनोहरा धरासवम्
बभूबमत्त मत्तकः प्रियामतीव मानयन् ।
यथाधनो परिस्फुरन्त डिद् धुति स्तरंगिता ।
सुशोभ राजनन्दिनी पति प्रहर्ष कारिणी ॥ ६५ ॥

अर्थ :—रूपमाधुरी को सुन्दर तरह से पीकर और मनोहर अधरामृतासव को

पाकर मत्त से भी अतिशय मत्त होकर प्रीतमजु प्रियाजु को अत्यन्त आदर देने लगे। प्रिय को अत्यन्त ही आनन्द देनेवाली श्री राजनन्दिनीजु भी विद्युत तरङ्ग वत तरङ्गित होकर मेघ मण्डल में विद्युतवत्त चमकने लगी ।। ६५ ।।

पश्यालि श्रृंगार गिरिस्सु मंजुलो लता समुहैश्च मणि प्रवेकैः ।

पर्यङ्क मध्ये हि विराजतेऽयं सनिर्भरो धातु विचित्र श्रृंगः ।। ६६ ।।

अर्थ :—हे सखी देखो तो यह प्रकाशमान श्रृङ्गार रस का पर्वत दिव्य लताओं के समूह से और विचित्र मणियों के पुंजों से शोभित पलंग के मध्य में ही सुशोभित हो रहा है यह अद्भुत पर्वत के शिखर में विविध प्रकार के झरना और धातुओं की खाने सुशोभित हो रही हैं ।। ६६ ।।

तस्योपरि स्वर्ण लता तिरंजिता फलद्वयेनाति घनेन शोभिता ।

विराजते हंसरवेण चारूणा भृंगैस्सरोजै विधु भिश्चमंडिता ।। ६७।।

अर्थ :—उस पर्वत के ऊपर दो सघन (कठोर) फलों से अति शोभिता एक स्वर्णलता अति अनुराग से सोभित हो रही है। जिस लता में हंसों का कल्लोल और कमलों के ऊपर भ्रमरों की भीड़ तथा चन्द्रमा से भी वह लता सुशोभित है।
।। ६७ ।।

रम्भा युगेनापि च बध्यमध्या, गानेन नाना शकुनी व्रजानाम्।

बभूव सुप्रीति तराति रम्या वातेन त्रैविध्य गुणेन वीजिता ।। ६८ ।।

अर्थ :—यह स्वर्णलता दो कदली स्तम्भों से मध्यभाग में बंधी हुई है। विविध प्रकार के पक्षियों के कलित कलश से अत्यन्त रमणीयतरा अनुरागमयी हो रही है, और त्रिविध शीतल, मन्द; सुगन्ध वायु से विजित हो रही है। (अर्थात् पर्यंक पर युगल सरकार को सखियां पंखा कर रही हैं।) ।। ६८ ।।

स्फुटाद्भुतांगानि सुशोभितानि वासं सखीनां नयनेषु चक्रुः ।

माधुर्य जालं तु निरीक्ष्यतेषां पलायिताः कोटि रतिस्मराश्चः ।।६६।।

अर्थ :—श्री युगल सरकार के अत्यन्त शोभायमान अद्भुद् प्रत्येक अंग सखियों के नेत्रों में साफ साफ वास करते हैं। इस प्रकार श्री युगल सरकार के माधुर्य

रस समुह को देख कर करोड़ों रति और काम देव दशों दिशाओं में भाग गये।
॥ ६९ ॥

नोमाति चांगेषु सुरम्य माधुरी सौधांगणे सैव वभूव रवांगणे।
अहोति चित्रं कविभारतीषु सखी मनोदृष्टिषु सुस्थिराऽभवत् ॥ ७० ॥

अर्थ :—श्री युगल सरकार के श्री विग्रह के अंग माधुरी अत्यन्त रमणीय शोभा श्री महल के भीतर न आमा कर बाहर आंगन में आई, उस में भी न आमा कर अन्य महलों में और आंगनों में आई तथा सभी आंगन और आकाश उस शोभा से अति ही चित्रित हो गए। अहो आश्चर्य है कि यह शोभा सखियों के मन और दृष्टि तथा कवि के वाणी में सुस्थिर हो गयी ॥ ७० ॥

खगा मृगाश्चैव चरा चराश्च निरीक्ष्य रूपं मुमु हुस्तयोस्तु।
अहो सुलावण्य कुलं निरीक्ष्य रूपं सुमाधुर्य कुलं वयस्याः ॥ ७१ ॥

अर्थ :—श्री युगलसरकार के सच्चिदानन्द जो रूप शौन्दर्य है वह दशों दिशाओं में जब फैल गया तब उस सौन्दर्य को देख कर पक्षी, मृग, जड़, चेतन सब मोहित हो गये। अहो अतिशय सौन्दर्य लावण्यता की यह परम्परा को सुन्दर माधुर्य की कुल परम्परा वाली समवयस्का सखियाँ ही देख सकती हैं ॥ ७१ ॥

रतिरंगरताः प्रतीककाः तत् कच जालं रसनापि विश्लथा।
अनुलेपरसः पपात तयोस्सखिहार श्त्रुटितोऽगहारतः ॥ ७२ ॥

अर्थ :—हे सखी, देखो रतिरङ्ग के अनेक प्रकार के चिह्न दीख रहे हैं जैसे—शिर के बाल बन्धन से विमुक्त होकर फैले हुए हैं और अंगराज भी शुभ अंगों से बहा हुआ है तथा भूषण भी टूट टूट कर इतस्ततः विखर पड़े हैं हार भी स्खलित हो गया है ॥ ७२ ॥

पश्य पश्य सरसां सु माधुरीं निर्निमेष नयनैस्सु लक्षिताः।
सखि पिबन्ति पुटैरिव कोटि श श्चित्र लेख लिखिता इवालयः ॥ ७३ ॥

अर्थ :—हे सखी देखो-देखो यह माधुर्य रस कितना रसीला है। ऐसा कहते हुए करोड़ों की संख्या में सखियाँ उस माधुर्य रस का पान निर्निमेष नेत्रों से

करती हुई विभोर हो गयी। वे सब ऐसी लगती हैं मानों महल में चारों तरफ सखियों का चित्र लिखा गया हो ॥ ७३ ॥

पश्यन्ति काश्चन तयोर्मुख माधुरीं तां,
शोणाधरं तु सरसं मदना तुरा काः।
कर्णान्तलंवित विलोल सरोज नेत्र
शोभां विलोक्य मुदिता नव यौवनान्या ॥ ७४ ॥

अर्थ :—नवीन अवस्था वाली कोई मदनातुरा सखी दोनों सरकार के अत्यन्त सरस अरुण अघर से युक्त मुख सरोज की माधुरिमां को देख रही है और कोई सखी आकर्णान्त विशाल चञ्चल नेत्र कमलों के शोभा को अवलोकन कर परमानन्दित हो रही है ॥ ७४ ॥

पश्यन्ति काश्चन कपोल युगं विचित्रम्
स्निग्धामलं वर्तुलमेव चारू।
किं पञ्च वाण सरसी भ्रमरै विंरावै
र्यत्रस्थितो विकच पद्म गणो विनालः ॥ ७५ ॥

अर्थ :—कोई सखियाँ निर्मल चिक्कन विचित्र दो गोल कपोलों को अच्छी तरह देख रही हैं और कहती हैं क्या यह पंचबाण कामदेव के सरोवर में मौनी भ्रमरों के द्वारा नाल रहित अविकसित कमलें तो प्रकट नहीं किये गये हैं? (मौनी भ्रमर यहाँ पर दन्त पंक्ति होते हैं) ॥ ७५ ॥

पश्यन्ति काश्चन सुचन्द्र मुखे भ्रूवौच
एतौ निरीक्ष्य मदनो विदधे स्वचापम्।
प्रायो विशाल नयनान्त सुतीक्ष्ण भागान्।
किं कर्णसाण रचितान् जयिनश्चवाणान् ॥ ७६ ॥

अर्थ :—कोई सखी प्रीतम के मुख चन्द्र में दो भृकुटी को देख कर कहती है कि यह क्या विशाल नेत्रों के कटाक्ष रूपी तीक्षण विश्वविजयी बाणों को कान रूपी साण में तेज करके कामदेव ने अपने धनुष में चढ़ा लिया है? ॥ ७६ ॥

पश्यन्ति काश्चन विनोद रसेन नाशा
श्रृङ्गार शोभन तिलं चिवुका न्नाराले।
किम्बा मनोभव निषंङ्ग युगं विशालं
रामेण कामसमरे विहितं विजित्य ॥ ७७ ॥

अर्थ :—कोइ सखी विनोद रस से आप्लुत हो कर प्रीतम के नाशिका और चिबुक के मध्य में श्रृंगार रस की शोभा वढ़ाने वाला श्याम बिन्दु को देख कर रस लेती हुई कहती हैं कि क्या श्रीराम जी ने कामदेव के साथ समर करके उस के विशाल दो तुणीर को जीत लिये हैं ? (यहां श्याम विन्दु काम देव और दोनाश्ण्पुट दो तुणीर हैं।) ॥ ७७ ॥

पश्यन्ति काश्चन सु लक्ष्म रसं प्रदीपं
नीलं प्रिया चिवुक चारु तले ऽतिरम्यम्
श्री चक्रवर्त्ति नृप सुनु मनः प्रियाया
विम्बाधरं बसति पातुमहोऽति लुब्धम् ॥ ७८ ॥

अर्थ :—कोई सखो प्रियाजु के चिबुक के बीच में अनुराग रस का लक्ष्य करने के लिये दीप सदृश नील विन्दु को देख कर कहती हैं कि अहो आश्चर्य है यह चक्रवर्ति कुमार श्री रघुनाथ जी के अत्यन्त लोभी मन श्री प्रिया जी के अधरों की रक्षा के लिये निवास कर रहा है ? ॥ ७८ ॥

पश्यन्ति काश्चन कपोल सुगर्त शोभां
किं कान्त मानस सुमत्त गजं विहर्तुम्।
आवर्त आशु रचितः प्रियया सुरुप
कासार कस्य निगड़ोऽपि च तस्य बद्धुम् ॥ ७६ ॥

अर्थ :—कोई सखी प्रियाजू के कपोल के गहराई को देख कर कहती हैं कि क्या यह प्रीतमजु के मनरूपी मत्तवाले हाथी को जल बिहार करने के लिए प्रियाजू के रूप सौन्दर्य रूपी सरोवर में भौंरें तो नहीं रचा गया है ? अथवा प्रीतम के मनरूपी मत्तगज को बाँधने के लिए सौंकल तो नही बनाई गयी ? ॥ ७९ ॥

पश्यन्ति काश्चन सुबाहुलतां सुधृष्टां
हारं . निधाय सुकुमार तरां चुचुम्ब ।
प्रायः प्रियस्य हृदयं मदना नुविद्धम्
आनन्द संप्लव सुधा रसपान मत्तम ॥ ८० ॥

अर्थ ;—कोई सखी श्री प्रियाजू की भुजलता को देख कर कहती है कि यह भुजलता प्रीतम के मदनानुविद्ध हृदय को आनन्दामृत समुद्र में बुड़ाने वाली प्रीतम के अङ्ग में हार की भाँति लिपटी हुई है । जिस सुकुमार भुजलता को आनन्दामृत रस समुद्र के रसपान से मत्तवाले प्रीतम वारम्वार चूमते हैं ॥ ८० ॥

पश्यन्ति काश्चन शिवां रमणी करस्थां
रेखां वियोग शमनीं प्रिय संङ्गमार्थाम् ।
कान्तः सुवेष गुण रूप निधिर्यया तु
वश्योनु वर्तित मनाः सततं प्रियायाः ॥ ८१ ॥

अर्थ :—कोई सखी किशोरी जी के रमणीय कर कमल की कल्याणमयी रेखाओ को देखती हैं जो रेखाएं प्रीतम के संग अर्थ को देनेवाली वियोग को शान्त करने वाली और हमेशा प्रियाजी के वशवर्ती मनवाले सुन्दर वेष गुण रूप के समुद्र श्री प्रीतमजी को वश में करने वाली हैं ॥ ८१ ॥

पश्यन्ति काश्चन कुचेशयुगं नमन्ति
स्वर्चन्तिनभ्र शिरसः पुलकांचितांगाः ।
कुर्वन्ति चापि विनयं जगतः प्रभू वां
कान्तस्य हृत्तल महो त्यजतां न नित्यम् ॥ ८२ ॥

अर्थ :—कोई सखी प्रियाजी के दोनों उरोजों को शिवजी के स्वरूप समझ कर पूजा करती हैं और नमस्कार करती हैं तया पुलकांकित होकर शिर से प्रणाम करती हुई कहती हैं कि हे जगदीश आप हमारे प्रीतम के हृदय तल को हमेशा के लिए कभी भी त्याग न करें ॥ ८२ ॥

प्राय स्तु यौवन गजेन्द्र रदौ प्रहारं

दृत्तौ हिं कामसमर प्रथितौ प्रमतौ।

श्री राजपुत्र मवलोक्य सुकेलि कुञ्जे

मत्तँ निपात्स्य शयने विजये प्रवृत्तौ ॥ ८३ ॥

अर्थ :—अथवा वे दोनों शिवजी न होकर युवावस्था रूपी मदमत्त गजेन्द्र के दो दाँत हैं जो प्रायः काम के साथ रण संग्राम के लिए तत्पर हैं। किसी सुकेलि-कुंज में प्रमत्त हुए श्री चक्रवर्ती कुमार को इन्होंने देखा और विजय में प्रवृत्त इन दोनों दाँतों ने प्रहार करके पर्यङ्क पर गिरा दिया ॥ ८३ ॥

पश्यन्ति काश्चन मुहु त्रिवलीं विशाला

मत्युच्च वक्षोज युगंरूक्षु :।

प्राय: प्रियस्त तृवलीभिषेण

सोपान वर्त्म त्रितयं चकार ॥ ८४ ॥

अर्थ :—पुनः कोई सखी श्री प्रियाजी के उदर में तीन रेखाओं को वारम्वार देखकर कहती हैं कि क्या यह प्रीतम ने ऊँचे स्थान में उन दोनों वक्षोजों को देख कर उनको पकड़ने के लिए त्रिवली के बहाने चढ़ने के लिये तीन सीढ़ी वाला मार्ग बनाया है ? ॥ ८४ ॥

मन्ये वयस्ये कुसुमायुधस्य

प्रासाद हर्म्यति विच्चित्र शोभाम् ।

सोपानवर्त्म त्रितियं विधात्रा

नेत्रोत्सवं सर्ष पुरांगणानाम् ॥ ८५ ॥

अर्थ :—हे मेरे सम वयस्के मैं तो ऐसा मानती हूँ कि फूल के आयुध वाले कामदेव का यह महल है जो अति ही विचित्र शोभा सम्पन्न है। समस्त पुरवासिनी स्त्रियों के नेत्रोत्सव स्वरूप है। अतः विधाता ने इस महल में चढ़ने के लिये त्रिवली के व्याज से तीन सिढ़ियाँ लगा दी है ॥ ८५ ॥

शङ्के ध्रुवं रूप समुद्र भङ्गाः

नैवान्यथा जात मतोहि जातम् ।

तेषाँ भवेदालि सुरम्य रूपं

मोहास्पदं नो किमुवर्णयामः ॥ ८६ ॥

अर्थ :—हे आली, मेरी समझ में तो निश्चय करके यह रूप सौन्दर्य रूपी समुद्र के तरङ्गे हैं और कोई अन्यथा नहीं है । इन त्रिवलियों से रूप की सुन्दर रमणीयता सब के लिए मोहास्पद हो जाय । यदि न हुई तो उसके लिये हम क्या वर्णन करें । अर्थात् कुछ नहीं कहा जाता है ॥ ८६ ॥

पश्यन्ति चान्या परमां सुनाभिं

बदन्ति चान्यौन्य महों गतेति ।

पश्यालि तां यौनसरो भ्रमित्वं

मनो दृशिर्यत्र न निर्जगाम ॥ ८७ ॥

अर्थ :—कोई अन्य सखियाँ परम सुन्दर नाभि को देख कर कहती हैं कि अहो यह महान सुन्दर अंगता है । हे आलि देखो यह युवावस्था रूप सरोवर में मानो भौंर पड़ गये हों जिस भौंर में मन और दृष्टि पड़ जाने पर फिर अन्यत्र कहीं नहीं जा सकती हैं ॥ ८७ ॥

पश्यन्ति रामा तरलं नितंवं

जाने प्रतीहार महो रतेस्तम् ।

परेदमूचे रमणी विशालं

सुकोमलं कामिनि काम चक्रम् ॥ ८८ ॥

अर्थ :—कोई रमणी सखी चमकीले नितम्ब को देख कर कहती है कि हे जाने हे प्रिये यह रती का महान् प्रतिहारी है । पुनः दूसरी सखी कहती है हे कामिनी यह विशाल सुकोमल रमणीय काम का सुदर्शन चक्र है ॥ ८८ ॥

सुलोचने नूनमियं सुवेदिका

शृङ्गार मूर्तिः प्रिय मानसस्य ।

किं दुन्दुभिः पुष्प सरासवामा

गारस्य नानामणि चित्रवर्णा ॥ ८९ ॥

अर्थ :—हे सुलोचने निश्चय ही प्रीतम का मन श्रृंगार रस का मूर्ति है उसके बैठने के लिये प्रिया जी का यह नितम्ब सुन्दर वेदिका है, अथवा पुष्प सरासन कामदेव की पत्नि के मणिमय महल का दुन्दभी है ॥ ८९ ॥

किं यौवनोन्मत्त गजेन्द्र कुम्भौ

दत्तप्रहारौ सखि कान्त यन्त्रा।

किमासनं तत्कुसुमायुधस्य

स्थित्वामुहूर्तेन जगज्जिगाय ॥ ९० ॥

अर्थ :--अथवा हे सखी प्रीतम द्वारा यन्त्र से चोट दिया हुआ युवावस्था सम्पन्न मदमत्त गजेन्द्र के दो मस्तक तो नहीं हैं अथवा बिश्वविजयी कामदेव का एक मुहूर्त विश्राम करने का आसन तो नहीं है ॥ ९० ॥

पश्यन्ति जंघे रमणी समूहा :

स्तम्भे किमेतौ रति मन्दिरस्य ।

रत्युत्सवे किं सुचिरम्भ युग्मे

सुरोपिते श्री रसराज भर्त्रा ॥ ९१ ॥

अर्थ :—रमणियों के समूह श्री स्वामिनीयू के दोनों जंघाओं को देख कर कहती हैं कि क्या यह रति के मणिमय मन्दिर के दो खम्भे तो नही है ? किंवा रस-राज रूप भर्ता के रति उत्सव मन्दिर में मङ्गल के लिये दो कदली वृक्ष तो नहीं लगाये गए हैं ॥ ९१ ॥

तयोरधः पद्मयुगं सनालं विचित्र वर्णं सखि पश्य कामम् ।

तस्याभितोहंसगणं गृणन्त नाना कथा केलिकला स्सुदृष्टा : ॥ ९२ ॥

अर्थ :—उन दोनों कदली स्तम्भों के नीचे नाल संयुक्त दो कमल विचित्र वर्ण के हैं। हे सखी इच्छापूर्ण देखो ? उन कमलों के चारों तरफ हंसों के समूह अपनी सुन्दर दृष्टि से देखते हुए नाना प्रकार के केलि विलास के कलाओं को कथा रुप में गान करते हैं ॥ ९२ ॥

नवां नवां दंपति रुप शोभां निरीक्ष्य सर्वे मुमुहुश्चराचरा : ।

निपीय रुपं ब्रुवते वयं के स्थानं किमे तत्तकुत आगतास्म ॥ ९३ ॥

अर्थ :—युगल सरकार श्री सीताराम जी महाराज के प्रतिक्षण नये नये रूप में दीखने वाली श्री विग्रह की कांति को देख कर सभी जड़ चेतनात्मक जीव मोहित

हो गये। उस रूप सुधारस को पीकर हम कौन हैं किस स्थान में हैं यह क्या हो रहा है इस प्रकार कहते हैं ॥ ९३ ॥

हंसाः शुका स्तितिर सारसाश्च परावताः केकि पिकाश्चकोराः ।
कुरङ्ग भृङ्गाः बत्तकाः सुसारिकाः विचित्रवर्णाद्भुत कामधेनवः ॥ ९४ ॥

अर्थ :—हंस, शुक, तित्तिर, सारस, कबूतर, मयूर, तोता, चकोर, मृग, मृग, बत्तक, मैना, रंग विरंग के अद्भुत रूप के कामधेनु गौवे ॥ ९४ ॥

तथैव नाना मृग पक्षि वृन्दा माधुर्यमत्ताः सखि निर्निमेषाः ।
पश्यन्ति नित्यं पति भाव मस्य स्त्रीत्वं गताः कामशराभिन्ना ॥ ९५ ॥

अर्थ :—हे सखी वैसे ही नाना प्रकार के मृग पक्षियों के समूह युगल सरकार के माधुर्य रस को निर्निमेष नेत्रों से देख कर आनन्दमत्त हो गये। इस प्रकार निरन्तर देखते हुए उन प्रीतम के लिये नित्य ही पत्नी भाव को प्राप्त होकर कामाग्नी से सन्तप्त हो गए ॥ ९५ ॥

सुवेषमास्थाय नृपात्मजो ऽयं
यदावहिर्गच्छति वामलोचने ।
सचेतनानामपि का कथा स्याद्
द्रवन्ति पाषाण शिला विशालाः ॥ ९६ ॥

अर्थ :—हे सुनयने सखी ? सुनो जब ये चक्रवर्ति कुमार सुन्दर श्रृङ्गार युक्त होकर नगर निवासियों के सामने अथवा जंगलों में इनके सौन्दर्य को देख कर जब बड़े-बड़े पत्थर शीला भी द्रवीत होकर पिघल जाते हैं तब चेतन नगर निवासी को तो कहना ही क्या है ॥ ९६ ॥

निमेष मात्रं परिहृत्य सर्वा,
रुपस्य चानन्त्य महोऽति रम्यंम् ।
विलोक्य हस्तौ कुचकुम्भ शिर्षे,
संस्थाप्य वां स्वस्ति भणन्ति चेति ॥ ९७ ॥

अर्थ :—इस प्रकार सभी सखियाँ युगल सरकार के अति रमणिय रूप की अनन्तता को देखतीं हैं और अपने वक्षस्थल के उपर हाथ रख कर कहती है कि अहो प्रियाप्रीतमजु को कल्याण हो। हम लोगों में से किसी के नजर आदि न लग जायँ ॥ ९७ ॥

उत्तार्य राम्ना लवणं सुभीता

हस्तौ स्वशीर्षेपि चकार काश्चित् ।

बभञ्ज काचिच्च तृणं परातद्

तद्भालेपि श्यामं तिलकं चकार ॥ ९८ ॥

अर्थ :—श्री युगल सरकार के सौन्दर्य से मुग्ध होकर भयभीत होकर राइलोन उतारती हैं और कोई अपने सिर के ऊपर हाथ रख कर देवताओं को मनाती हैं कि कोई विघ्न न हो जाय तथा और कोई तृण तोड़ती हैं अन्य कोई प्रियाप्रीतमजू के भाल पर काजल के विन्दु लगा देतीं हैं ॥ ९८ ॥

बबन्धकाचित्तु सुरम्य मौषधम्

प्रकल्प्य काचिद्रमणी पयोधरम् ।

कुम्भं सुधायाः प्रियवक्षसि स्फटं

दधार सप्रेम कुरंगनेत्रा ॥ ९९ ॥

अर्थ :—कोई रमणीयाँ सखी औषधि बाँध देती हैं और कोई मृगनयनी रमणीया वक्षस्थल की रचना करती हैं और अमृतघट को प्रीतम के वक्षस्थल पर स्पर्श करा देती हैं ॥ ९९ ॥

काचित्स्वजंघोपरि पादपल्लवं,

निधाय कण्डूयति मत्तनेत्रा ।

काचित् कराभ्यां मुखचन्द्र विम्वं

मुखार विन्देन चुचूम्ब पुष्टम् ॥ १०० ॥

अर्थ :—कोई मत्तनेत्रावली सखी प्रीतम के चरण कमलों को गोद में रख कर खुजलाती है । कोई बाला प्रीतम के सुपुष्ट कपोलों को अपनी मुखार बिन्द से सुचुम्बन करती हैं ॥ १०० ॥

काचित्स्वहस्तौ चिबुकस्य चाधो

विम्वाधरं पश्यिति सुष्ठु कृत्वा ।

काचित्कपोलं शुभलक्षणाढ्यं

ब्रूते हि किं कामवितान मेतत् ॥ १०१ ॥

अर्थ :—कोई सखी अपने हाथों को प्रीतम के चिबुक नीचे करके बिंब सदृश प्रीतम के अधरों को अच्छी तरह से देख रही है । इसी प्रकार कोई सखी सुन्दर लक्षणों से युक्त प्रीतम के कपोलों को देखती हुई कहती हैं कि क्या यह काम वितान (चन्दोवा) हैं ? ॥ १०१ ॥

काचित्सुधासागर चन्द्रभूत दन्तद्यु तिपश्यति लोलनेत्रा ।

प्रायः शशाङ्कामृतशीकराःकिं चन्द्रच्छटा दाड़िम बीजवृन्दाः ॥ १०२॥

अर्थ :—कोई चञ्चल नेत्र वाली चन्द्रमा रूप धारी अमृत के सागर भूत मुख चन्द्र के दन्तद्यु ति (कान्ति) को देख रही है और कहती है कि क्या यह चन्द्रमा से अमृत के सीकर निकल रहे हैं अथवा चन्द्रमा के किरण निकल रहे हैं। अथवा अनार के बिजों के समूह तो नहीं है ? ॥ १०२ ॥

जगौ सुकेलि कलहंस भाषिणी,

मोधुर्य तां चापि शिवां प्रियायाः ।

खगा मृगा वालतृणाः शिलाश्च,

द्रवन्ति चाकर्ण्य कल ध्वनिताम् ॥ १०३ ॥

अर्थ :—कोई कोकिल वयनी श्री प्रियाजू के माधुर्यता और कल्याणर्यता तथा उन के सुन्दर केलियों को गान कर रही है। उन के गाने की मधुर ध्वनि को सुनकर मृग, पक्षी, बाल, युवा, तथा तृण, पाषाण सभी द्रवित हो रहे हैं ॥ १०३ ॥

अनन्तपारां जनकात्म जायाः

लावण्य शोभां परमां प्रवीणा ।

जगौकलं सा परितोष हेतुं

प्राणांश्तु दानं ददतेऽनुरक्ताः ॥ १०४ ॥

अर्थः—कोई सुप्रविणा सखी श्री जनकात्मजा जी के अनन्त अपार लावण्यता, के तथा परमा शोभा के गान कोकिल कण्ठ से कर रही है। दोनों दम्पति की प्रसन्नता के लिए अत्यन्त अनुराग पूर्ण वह सखी अपने प्राणों को भी दान दे देती है ॥ १०४ ॥

काचित्स्वरुपं परमाद्भूतं तद्रामप्रियायाः कलमंजुभाषिणी ।

जगौमृगाः पक्षि समूह भृंगा मुनिव्रतं तज्जगृहुश्श्म निश्चलाः ॥ १०५ ॥

अर्थ :—कोई मंजु कोकिल वयनी युगल सरकार के परं अद्भुत् उसका गान करती है जिस गान को सुन कर मृग, पक्षी तथा भ्रमरादि के समूह निश्चल मुनिव्रत को धारण कर लेते हैं ॥ १०५ ॥

गानं सुरम्यं त्रिविधं विशाल माकर्ण्य मत्तो वरराट रामः ।

मन्द्दस्मि जागर्ति सुविह्वलांग ऊँचेरिम सीतेति च राजपुत्री ॥ १०६ ॥

अर्थ :—सखियों के द्वारा तीन ग्राम से अलाप किया हुआ विशाल गान को जब श्री प्रीतमजू ने सुना तो आनन्द से विमत्त होकर मन्द मुस्कान युक्त विह्वल होकर ऊँचे स्वर से मैं सीता हूँ। मैं राजपुत्री हूं ऐसा कहते हुए बड़बड़ाते हुए जगे। ॥ १०६ ॥

श्यामाप्रियाऽहं रघुनन्दस्य संजीवनी चास्मि वदन् सुधूर्णन्।
ताम्बूल रागांचित नेत्र युग्मौ नेत्रांजना रंजित सुन्दरोष्ठः ॥ १०७ ॥

अर्थ :—पान की पीक के रङ्गों में दोनों नेत्र रंगे हुये और नेत्रांजन से सुन्दर रंगे हुए आनन्द विभोर होकर आँखें घुमाते हुए कहते हैं कि मैं श्री रघुनन्दन जी की संजीवनी श्यामावस्था की प्रिया हूँ ॥ १०७ ॥

सुमंथरी यावकरक्त भालः प्रियापदालक्त करंजितोरः।
प्रियांगरंगाङ्कित्त राजपुत्रं विलोक्य सर्वा मुमुहुस्म रामाः ॥ १०८ ॥

अर्थ :—श्री चक्रवर्ती राजकुमार को श्री प्रियाजी के अंग रंग से चिन्हित प्रियाजू के चरण महावर के चिन्ह वक्षस्थल में वही महावर का चिन्ह मस्त में तथा सर्वाङ्ग में लगा हुआ और प्रेम से विभोर हुई अवस्था को देख कर सभी रामागण स्नेह विभोर हो गयीं ॥ १०८ ॥

मुखोपरिस्निग्ध रसांकितानि वामालकान्यालि निरीक्ष्यभान्ति।
किन्नो विमोहाय सुकामयन्त्रं किंमृङ्गजालं मुखपद्म रक्तम् ॥ १०९ ॥

अर्थ :—हे सखी प्रियतमजू के मुखचन्द्र पर सरस अलकों को तो देखो वे कितने सुन्दर हैं, क्या वे अलकें हम सब को विमोहित करने के लिये कामदेव का यन्त्र तो नहीं है ? अथवा मुख कमल के प्रेम में रंगे हुये भ्रमरों का समूह तो बैठा नहीं है ? ॥ १०९ ॥

प्रायो भुजंङ्गिन्य इमास्सुचन्दनो परि स्फुरन्ति प्रमदागणानाम्।
दर्पं विद्रष्टुँ किमुवा मृगाङ्कः सीतापगामज्जन पुण्यपूर्णः ॥ ११० ॥

अर्थ :—अथवा प्रीतम के मुख रूपी चन्दन वृक्ष में मनीनियों के मादन रूपी मद को डसने के लिये क्या यह नागिन तो लिपटी नहीं हैं ? तथा सीतारूपी पवित्र गंगा में अवगाहन के लिए यात्री बनकर चन्द्रमा आया है क्या ? ॥ ११०

इत्थं विचित्रं नरनाग यक्ष सिद्धेशदेवादि कुमारिकाणाम्।
वचांस्य भूवन्वत दारु पुत्रिका इवाभवन् पक्षिमृगा गणाश्च ॥ १११ ॥

देव कुमारियों की बातें हो ही रही हैं तब तक इधर युगल सरकार के सौन्दर्य को देख कर, मृगपक्षि आदि सभी प्राणिमात्रों की कठपुतली की सी दशा हो रही है अर्थात् प्रेम में सब को समाधि लगी हुई है ॥ १११ ॥

श्री राजपुत्रोऽपि चराचराणां विमोहनो भूमिसुता मुखाब्जम् ।
विलोक्य वामालक पक्ष्मपाश बद्धश्चकोरेक्षण उद्धृतारिः ॥ ११२ ॥

अर्थ :—सम्पूर्ण चराचर जगत को तथा अपने शत्रु को भी स्वसौन्दर्य से विमोहित करने वाले श्री चक्रवर्ती कुमार भी भूमिसुता श्री किशोरी जी के मुखचन्द्र में बिखरे हुए सुन्दर अलकावलियों को देख कर चकोर वत् श्री प्रियाजू के मुखचन्द्र को देख रहे हैं ॥ ११२ ॥

जग्राह गण्डौ करसारसाभ्यां विम्वाधराभ्या मधरौ मिमेल ।
शंके शशांकौ पिबतः सुधाम्भौ सखी चकोरी नयनाः प्रहर्षम् ॥ ११३ ॥

अर्थ :—अपने कर कमलों से दोनों कपोलों को पकड़ कर बिम्ब सदृश अधरों को मिला रहे हैं । ऐसा जान पड़ता है कि दो चन्द्रमा दो अमृत समुद्र को पी रहे हों सखियाँ अपने नेत्रों को चकोरी बना कर परम हर्षित हो रही हैं ॥ ११३ ॥

उद्घाटयन्नेत्र सरोज युग्मं बभौ मनोजामदमानमत्तौ ।
राममप्रियः किं श्रुतिशाण तेजितौ कन्दर्प बाणौ भृकुटी धनुस्थौ ॥ ११४ ॥

अर्थ :—कान रुपी साण में तेज करके अपने प्रभाव के मद-मान से विमत्त होकर भृकुटी रूपी धनुष में कामदेव के वे तीक्ष्ण वाणों को चढ़ा कर नेत्र रुपी कमलों को खिलाते हुए क्या ये प्रीतम श्री रामजी कामदेव तो नहीं हो गये ॥ ११४ ॥

शोणाधरं चारुतरं कपोलं नाशास्मितं चन्द्र समं सुकर्णम् ।
मुखारविन्दं स्मितकुन्तलावृतं बभौ द्विरेफै रिव काम दूतैः ॥ ११५ ॥

अर्थ :—अरुण अधर अति सुन्दरतर कपोल, चन्द्रमा के सदृश आशामणि और सुन्दर कान तथा मन्द मुस्क्यान युक्त भ्रमर सदृश अलकावलियों से आवृत्त मुख-कमल कामदेव के दूतों से घिरा सदृश हो गया ॥ ११५ ॥

धम्मिल्ल युक्तं शुशुभे ललाटं तड़िद्बलाकाभिरिवान्तरिक्षम ।
तार्टकगं मौक्तिक गुच्छ युग्मं दीपं यथा चन्द्र सभा समीपे ॥ ११६ ॥

अर्थ :—शिर की चोटी युक्त श्री किशोरी जी का मस्तक ऐसा शोभित होता है कि जैसे बिजली और बकपंक्ति से आकाश । (यहाँ बिजली माँगलर और वन्दी

बकपंक्ति हैं) अथवा कान के तरवनों के पास के दोनों तरफ के मौक्तिक गुच्छे ऐसे लगते हैं जैसे चन्द्रमा की सभा के निकट दो दीपक प्रज्वलित किये हों (यहाँ मुख चन्द्र है मुक्ता गुच्छ सभा और तरवन दीपक हैं ।) ॥ ११६ ॥

सुशोभितस्य हृदिमौक्तिकश्रक मन्ये प्रियाहास प्रकाशमस्ति ।
पपातगंगा किमुवा गिरीशयो वासं चकाराथ मनस्सखीनाम् ॥११७॥

अर्थ :—हृदय में मौक्तिक हार अति ही सुशोभित है मानों श्री प्रिया जू की मन्द मुस्कान ही प्रकाशमान फैली हों अथवा दो गिरीराज शिव के ऊपर गंगाजी की धारा गिर रही हों। वहीं पर सखियों का मन निवास कर रहा हो ॥ ११७

उवाच रामा नृपराज पुत्रि पूर्वा कथां ब्रूहि सुकेलिभूताम् ।
नोचे हसन्ति दशनक्षतेन सीत्कारयुक्तेन वभौपुनःसा ॥ ११८ ॥

अर्थ :—श्री किशोरी जी से नृपराजपुत्र बोले की हे प्रिय सुन्दर केलिभूत पहले के कथा को कहिये—तब श्री प्रियाजी कथा न कहकर हंसने लगी तो दान्तों के क्षत की पीड़ा से विक्षिप्त हो गयीं।

अन्यद्रसज्ञः किमु कृत्यरुप मुवास तस्मिन् रसपान लुब्धः ।
श्रृण्वन् गिरं चन्द्रमुखी चकार स्वांके चकोराक्ष सुकेलिदक्षः ॥ ११९ ॥

अर्थ :—रसपान के लुब्ध रसने फिर उस दन्त क्षत् के बाद क्या किया ? दूसरी सखी कहती है कि श्री प्रियाजी के कुछ कड़े शब्दों को सुनकर चन्द्रमुखी श्री प्रियाजू को अपने गोद में बैठा कर केलिकलाप्रवीण प्रीतम के नयन चकोर हो गये ॥ ११९ ॥

तनुंसुतन्वा मनसा मनस्तु नेत्रेण नेत्रं परिरभ्य कामम् ।
गंण्डेनगण्डंन्तु सुकुण्डलेन सुकुण्डलं कण्ठस्रजा वभूताम् ॥ १२० ॥

अर्थ :—तत्पश्चात् सुशरीरसे सुशरीर का मन से मन का नेत्रों से नेत्रों का मनमाना आलिंगन और कपोल से कपोलका सुकुण्डलों से सुकुण्डलों का आलिंगन कण्ठ का हार बन गया ॥ १२० ॥

अंगावलोकनं भक्षं भोज्यं चालिङ्गनं सखि ।
लेह्यं चाधर पानादि चुम्बनं चोष्यउच्येते ॥ १२१ ॥

अर्थ :—हे सखी इसके पश्चात्, अंगावलोकन ही भक्ष्य पदार्थ; परस्पर आलिंगन ही भोज्य पदार्थ, अधरामृत पान ही लेह्य पदार्थ, चुम्बन ही चोस्य पदार्थ हैं। इस प्रकार के पदार्थों के भोजन दोनों सरकार ने किया ॥ १२१ ॥

चक्रतुर्मङ्गलं चैव प्रीतौ भोग विनोदिनौ ।

तौमङ्गलमयौ नित्यं सख्यः सर्वाः सुमङ्गलाः ।। १२२ ।।

अर्थ :—विनोद ही भोग है जिनका, मङ्गल मय श्री विग्रह वाले दोनों दम्पति आपस में एक दूसरे के लिये मंगल कृत्य कर रहे हैं। इनके मंगल कृत्यों की सहायक रूपा सभी सखियाँ नित्य मंगल स्वरूपा हैं ।। १२२ ।।

सीतारूपापगां वीक्ष्य रूप सिन्धु नृपात्मजम ।

तृणानि चिच्छेद दुर्यत्नं चक्रुस्ता दृष्टि दोषहम ।। १२३ ।।

अर्थ :—श्री सीता रूपी दिव्य नदी को देख कर और रूप के सिन्धु श्री चक्रवर्ती राजकुमार को देख कर सखियाँ दृष्टिदोष निवारण के लिये तृण तोड़ती हैं, वलैया लेती हैं ।। १२३ ।।

स्वरूपपानाचमनं कृत्वा चाधर वीटिकाम् ।

अंङ्गनिगन्ध द्रव्यानिदम्पति मुदमापतुः ।। १२४ ।।

अर्थ :—निज सुन्दर रूप रूपी भोजनादि तथा आचमनादि कर के अधर पान रूपी पान पाकर अंग अरु भावन ही सुगन्धादि लेपन करके दोनों दम्पति आनन्द विभोर हो गए ।। १२४ ।।

श्री सीतापति रूपे तु नानुरक्ताश्च नाम्नि ये ।

ज्ञानयोगव्रते रक्ताः श्रमस्तेसां तु केवलम् ।। १२५ ।।

अर्थ :—जो लोग श्री सीतापति के रूप में तथा नाम में न अनुराग करके केवल ज्ञान योग व्रत में आसक्त हैं तो उनके लिए केवल दुःख ही मात्र होगा ।। १२५ ।।

वृथा च जन्म लोके गरिमन सदिन्द्रिय पोषणात् ।

सूकरश्वखरैस्तुल्या वृथा पण्डित मानिनः ।। १२६ ।।

अर्थ :—उनके जन्म इस लोक में असत इन्द्रियों के पोषण पूर्वक व्यर्थ हैं। ऐसे मनुष्य सुवर कुत्ते गदहे के तुल्य हैं। व्यर्थ में अपने को पंडित मानते हैं ।।१२६।।

बन्दे परिजनं श्रीमत्साकेतपुरवासिनं ।

चातकानां चकोराणां मीनानां तुल्य वृत्तिभिः ।। १२७ ।।

अर्थ :—चातक और चकोर तथा मीन के सदृश भाव की वृत्ति वाले महापुरुषों द्वारा अनन्त ऐश्वर्य से पूर्ण दिव्य साकेत धाम में वास करने वाले परिजनों के सहित उनको नमस्कार हो ।। १२७ ।।

श्री रामे रसिक सख्वन्नित्य रूप मखण्डकम् ।
येषां कृपाकटाक्षेण भक्ति ब्रह्माण्ड गोल के ॥ १२८ ॥

अर्थ ;—जो लोग नित्य अखण्ड शाश्वत श्री राम रूप में आसक्त हैं उनको भजो। जिनकी कृपा कटाक्ष से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भक्ति प्राप्त होती है ॥ १२८ ॥

विस्तृता भूदखण्डातु सरसा राघव प्रिया।
तेषां कृपाकटाक्षैंतु नर्त्ते भक्तिः कदाचन ॥ १२९ ॥

अर्थ :—वे सरस हृदय के भक्तों द्वारा श्री राघव जी को अत्यन्त प्रिय भक्ति अखण्ड विस्तार होती है उन भक्तों की कृपा कटाक्षों के बिना कभी भी भक्ति नहीं हो सकती ॥ १२९ ॥

चतुर्षदिक्षु येकुञ्जा स्तेभ्यः सख्यस्सहस्त्रशः।
चकोरी चातकी मीनि बृत्तयः समुपागताः ॥ १३० ॥

अर्थ :—चारों दिशाओं में जितने भी कुञ्ज हैं उन हजारों कुञ्जों से चकोर, चातक, मीन बृतिवाली जितने भी सखियाँ हैं वे सब श्री युगल सरकार के सयन कुञ्ज में आईं ॥ १३० ॥

वस्त्राभरण गानस्य वेदवाद्य ध्वनि स्तथा।
चच्छाद भवनं सर्व कुञ्ज कुंजान्तरांगणम् ॥ १३१ ॥

अर्थ :—उन सखियों के बस्त्र, भूषण, गान, बाद्य, वेद सम्मत संगीत ध्वनि से बह भवन तथा कुञ्ज तथा आंगनादि सब भर गये ॥ १३१ ॥

युक्तो मन्दस्मितै र्गन्धैर्मातरिस्वाजगौ पुनः।
श्रुत्वा सु मधुरं गान मन्योऽन्यमुपगूहितौ ॥ १३२ ॥

अर्थ :—सखियों का मन्द मुस्कान युक्त मुखार विन्द से निकली हुई सुगन्ध से सुरभित वायु भी उनके सुमधुर गान के साथ-साथ गाने लगा। उस (युगल स्वर) से मिश्रित सुमधुर गान को सुन कर श्री प्रियाप्रीतमजु परस्पर आलिंगन करने लगे ॥ १३२ ॥

विपरीतै स्सुवस्त्रैश्च धुति मद्भिः सुभूषणैः।
नेत्राभ्यां दिशतस्सञ्ज्ञा मुदितौ तौ सखीगणान् ॥ १३३ ॥

अर्थ :—दिव्य वस्त्र और प्रकाश मान भूषणों को दोनों दम्पत्ति विपरीत रूप में धारण किये हुए हैं। दोनों ने अत्यन्त आनन्दित होकर सखियों को आनन्दित करते हुए इशारा किया ॥ १३३ ॥

नील पीतस्थली रम्या मधुरा काम वर्षिणी ।
सूर्योदये भृ ग गर्भ पद्मैंहंसततेरिव ॥ १३४ ॥

अर्थ :—युगल सरकार के शयन कुञ्ज की अत्यन्त रमणीय आनन्द की वर्षा करने वाली अति सुकोमल मणिमय दिव्य भूमि, नील, पीत, श्वेत तथा अनेक प्रकार के रंग की है जिसमें सूर्योदय होने पर भ्रमर सहित कमलों की तथा हंसों की पंक्ति सदृश लगती है ॥ १३४ ॥

ताभिर्द्वारे स्वनन्तेषु हेमरत्न मयानि च ।
कपाटानि व्यवर्तन्त बस्त्रप्रावरणानिच ॥ १३५ ॥

अर्थ :—युगल सरकार का इशारा पाकर सखियों ने सुवर्ण तथा रत्न जटित अनन्त द्वारों के फाटकों को और वस्त्रों के पर्दों को खोल दिया ॥ १३५ ॥

ततः शयन कुञ्जातु नाना मणि कलामयात् ।
निर्जग्मुद्य् ति पुंजानि भोगवस्तून्यनेकशः ॥ १३६ ॥

अथ :—इसके बाद अनेक प्रकार का मणियों से कला कौशल पूर्वक बनाया गये दिव्य शयन कुंज से अनेक रंग के प्रकाश का समूह और विविध प्रकार की (छत्र चमर, व्यंजन पाबड़े आदि) भोग की वस्तु बाहर आईं ॥ १३६ ॥

सुस्पर्शानि विचित्राणि मृदुन्यास्तरणानिच ।
भान्ति तस्मिन्मनो ज्ञानि मनांसि बसतां किल ॥ १३७ ॥

अर्थ :—अति सुकोमल सुन्दर स्पर्श वाले चित्र विचित्र रंग के दिव्य बिछावन बाहर के कुंजों में बिछाये हुए हैं उनमें से प्रकाश को कीरणें निकल रहीं हैं इन मनोरम बिछावनों में दृष्टि जाती है तो फिर मन वहाँ से लौटना नहीं चाहता है, मानों वहाँ रहने बालों का मन ही वे बिछावन बन गया हो ॥ १३७ ॥

कुसुम्भानि सुगंन्धीनि पंच रंगाणि भन्ति वै ।
तेषामुपरि शीलाद्यैर्विद्वांसो विदुषामिव ॥ १३८ ॥

अर्थ :—उन बिछावनों के ऊपर पंचरंगा अत्यन्त सुगन्धित प्रकाशमान बहुत फूल बिछे हुए हैं ऐसा जान पड़ता है मानों विद्वद् मण्डली के मध्य में महान विद्वान अपने शील सौन्दर्यादि गुणों से शोभित हो रहे हों ॥ १३८ ॥

तेषुधावान्ति चपला भृंङ्गी भृंङ्गास्सहस्रशः ।
प्रगल्भारतिकन्दर्प दूती दूता इव स्वयम् ॥ १३९ ॥

उधर दौड़ रहे हैं मानों मतवाले काम और रति के दूत और दूती ढीठ होकर स्वयं आये हुये हों ॥ १३९ ॥

प्रायः श्री रस राजोऽत्र स्वतनोस्सर्व नैपुणम् ।
दृष्ट्वा बहुविधं रूपं चकार मुदितःसखि ॥ १४० ॥

अर्थ :—हे सखी, प्रायः इस स्थान पर रसराज श्रृङ्गार ने अपने शरीर में सभी निपुणता देख कर आनन्दित होकर बहुत प्रकार के रूप बनाये हैं ॥ १४० ॥

मन्ये रमां परित्यज्य पतिचात्र समागताम् ।
श्री हरे रागताः नेतुं दूती दूताः विचक्षणाः ॥ १४१ ॥

अर्थ :— मालूम पड़ता है कि अपने पति विष्णु को त्याग कर श्री रघुनाथ जी के पास में आयी हुई रमा को ले जाने के लिये भगवान श्रीविष्णु के कुशल बुद्धि वाले दूत और दूती आये हुए हों ॥ १४१ ॥

पक्षिणो दम्पति रूपं रत्नपंजर संस्थिताः ।
जगुः सुमधुरं रक्तं नाना वर्णाः सहस्रशः ॥ १४२ ॥

अर्थ :—हजारों की संख्या में रंग बिरंग के पक्षी सुन्दर रत्नों के पिंजड़ों में बैठे हुये अत्यन्त अनुरागपूर्ण सुमधुर वाणी से श्री युगल सरकार के रूप का गान कर रहे हैं ॥ १४२ ॥

तेषां व्याजेन किं कामो नाना रूपोऽस्ति लम्पटः ।
वसे चकार तत्सर्वं नारी रत्नं सुमानिनम् ॥ १४३ ॥

अर्थ :—मालूम पड़ता है उन भौंरों के बहाने अति लम्पट कामदेव बहुत रूप धारण कर अति मानिनी उन समस्त नारी रत्नों को अपने वश में कर लिया हो। ॥ १४३ ॥

हरितपीतारुणश्याम मणिप्रोतरसातले ।
लताभिर्वेष्टिताभाति बृक्षपंक्तिः सुनूतना ॥ १४४ ॥

अर्थ :—युगल सरकार के शयन कुंज से बाहर के उपवन कुंज वाले वन में जो भूमि है वह हरे, पीले, रक्त श्याम मणियों से सजे हुए बृक्षों से अनेक प्रकार की लतायें नवीन-२ शोभा से युक्त होकर लिपटी हुई ऐसे वृक्षों की पंक्ति अति शोभित हो रही है ॥ १४४ ॥

सीतया चारुसर्वाङ्गया श्री राम इव सुन्दरः ।
वभौ सर्वगुणारामो वसन्तइव वत्सरः ।। १४५ ।।

अर्थ :—सर्वाङ्ग सुन्दरी श्री सीता जी को सर्वाङ्ग सुन्दर श्री रामजी से आलिंगन करने से जैसी शोभा होती है वैसे ही इस कुंज से बाहर वाले वन के सालभर में आनेवाले वसन्त की तरह सर्वगुण पूर्ण शोभा हो रही है ।। १४५ ।।

मणिप्रवेकैः रखचिता वितानाा, विभान्ति नाना पट चित्र तानाः ।
स्वर्णच्छदा मौक्तिकदामतानाः सुरम्यनाना मणि भूमि तानाः ।। १४६ ।।

अर्थ :—उस रमणीय वाग के मणिमय भूमि के मध्य में कहीं पर दिव्य प्रकाशमान चित्र विचित्र वस्त्र का वितान तना हुआ है जिस में बहुमूल्य रत्न जड़ित हैं और उसमें सुवर्ण की खिड़की है तथा मोतियों के गुच्छे झूले हुए हैं ।। १४६ ।।

नितम्बिनी मान मृगस्य वागुरा इवावतस्थुः कुशुमायुधेन ।
प्रसारिता जिह्मतरेण चित्रा निरीक्षणादेव च बंधन क्षमाः ।। १४७ ।।

अर्थ :—यह वितान क्या है, मानों कुटिल आचरण वाले कामदेव ने सुन्दर नितम्ब वाली मानवतियों के मान रुप भृग को फंसाने के लिये जाल बिछाया गया हो । तथा वे मानवती वालाओं की नजर उस चित्र विचित्र दिव्य मणिमय भूमि में तथा उस वितान में पड़ते ही वे सब प्रीतम के बन्धन से वंध जाती हैं । ।। १४७ ।।

सदर्तवः षड्युग पद्विभान्ति सुविभ्रमे मानिनी चित्रकुञ्जे ।
त्यजन्तिमानं सुदृढंनिरीक्ष्य स्वयं प्रियं चाभि सरंति रामाः ।।१४८।।

अर्थ :—हे मानिनी ? उस वन में जो चित्र विचित्र रंग के जो दिव्य कुंज हैं उन कुंजों में एक ही साथ छओ ऋतु अपने अपने वैभव को फैलाये हुए हैं । उसको देखते ही दृढ़ से दृढ़ मानवती रामा भी अपने मान को त्याग कर प्रीतम के अनुकूल हो जाती है ।। १४८ ।।

कुंजेष्वनन्तेषु हिरण्मयेषु राजन्ति पर्यङ्क गणेषुमध्याः ।
सुकान्त रूपासवपानमत्ताः नसंस्मरुभूंषण वस्त्रगात्रम् ।। १४९ ।।

अर्थ :—उस कानन में दिव्य सुवर्णमय अनन्त कुंजों में पर्यङ्कों के ऊपर अपने सुकान्त के रूप रूपी मादक को पीकर विमत्त हुई मध्यावस्था की सभी मदतागण अपने अपने अंगों के वस्त्राभूषणों का भी स्मरण नहीं कर रही हैं ।। १४९ ।।

सीताश्मि रामेतिवदन्सुकेलिश्चंचु विचित्रै र्वतिस्मराढ्याः ।
सर्वासुचोच्च रतिकुंजदिक्षु द्रव्यानि भव्यानि बिभान्ति नाना ।। १५० ।।

अर्थ :—उस बाग के मध्य में सभी दिशाओं में उच्च केलि विलास के सभी कुंजों में अनेक प्रकार के मंगलमय द्रव्य विलाश के योग्य प्रकाश कर रहे हैं। उन कुंजों में विचित्र विलास सक्ति से बरराती हुई सखियाँ कहती हैं कि मैं सीता हूँ मैं राम हूं ऐसा कहती हुई विचित्र केलियों के अनुभव करती हैं ॥ १५० ॥

लतानि कुंजानि च रत्न कुंजाः पक्षी व्रजा स्तेषु पठन्ति नाना।
नामानि माधुर्य मयानि भूरि मुहुर्मुहुः कूजयन्तीव मत्ताः ॥ १५१ ॥

अर्थ :—उस दिव्य बन में अनेक प्रकार के लता कुंज और मणियों के प्रकाशमान कुंज जिनमें विविध जाति के पक्षियों के समूह युगल सरकार के अनुराग से आनन्दित हो कर बहुत प्रकार के माधुर्यमय प्रियाप्रीतमजू के नामों को बारम्बार पाठ करते हुए बोलते हैं ॥ १५१ ॥

कंदर्पनाना मणि कुंजमध्ये चकास्ति कुंजं निधुकाननाह्वयम्।
तस्मिन् लता रत्नमया श्सुकुंजा विभांति सख्यो ऽतिविशाल कामाः
॥ १५२ ॥

अर्थ :—उसी कानन में विविध प्रकार के मणिमय काम केलि के बहुत से कुंजों के मध्य में एक निधु कानन नाम का बिशाल कुंज प्रकाशमान हो रहा है इस कुंज के भीतर विविध प्रकार के लता कुंज और रत्ननय कुंज प्रकाशित हो रहे हैं। उन में अत्यन्त विलासासक्त सखियाँ विराज मान हैं ॥ १५२ ॥

पर्यङ्क पुष्पा स्तरणो परिस्थौ विरेजतुस्तौ ललितौ वयस्याः।
सुकेलि चिन्हौ ललिते विशाले नेत्रेध्वजेस्तः किमु मीन केतोः ॥ १५३ ॥

अर्थ :—हे समान अवस्था वाली सखी उसी निधु कानन के भीतर पुष्पों के बिछावन बिछे हुए पर्यङ्क के ऊपर दोनों प्रिया प्रीतमजु बड़ी ही सुन्दरता पूर्वक बिराजमान हुए हैं। उनके विशाल सुनेत्र केलियों के चिन्हों से चिन्हित कैसे लगते हैं। जैसे वे दोनों नेत्र कामदेव की दो ध्वजा हैं क्या? ॥ १५३ ॥

मुखाम्बुजे कुन्तलवृन्दभृङ्गा लसन्ति चौराः सखि दृष्टिपक्ष्मणाम्।
कपोलयोस्सुन्दरी चाकचिक्यं भिनत्ति चित्तं प्रियराग रक्तम् ॥ १५४ ॥

अर्थ :—हे सखी! प्रियाजु के मुख कमल में अलकावली कैसे शोभीत हैं मानों सखियों के मन और दृष्टि को चुराने वाले भ्रमरों का समूह हों। हे सुन्दरी! इन प्रीतम के दोनों कपोलों की विचित्र रचना युक्त शोभा प्रीतम के अनुराग से रंगे हुए हमारे चित्त को विदीर्ण कर रही है ॥ १५४ ॥

मुक्ता फलं राजति नासिकायां बिम्बाधरे चातिशुशोभरस्थे ।
खस्थे शशांके चपलाभिरक्ते विन्दुःसुधाया इव तापहारी ॥ १५५ ॥

अर्थ :—हे रमणी। प्रीतम की नासिका में नाशामणि कैसी प्रकाश मान हो रही है, मानों आकाश में स्थित चन्द्रमा में बिजली अनुराग से चमक रही हों। अथवा वह नाशा मणि प्रीतम के विरहियों के ताप शान्ति के लिये अमृत का बिन्दु हो ॥ १५५ ॥

अंशे भुजा चारुतरेवपीना सुमन्मथं हस्ति करं करिण्याः ।
विभाति नाना कुसुमैरूपेता मालोरसि व्योम्नि यथाभ्र पंक्तिः ॥ १५६ ॥

अर्थ :—जैसे कामदेव ने हाथी बन कर अपनी प्रिया हथिनी के उपर सुंढ़ डाली हो, उसी प्रकार प्रीतमजु अपनी सुपुष्ट आजानु भुजा को श्री प्रियाजी के कंधे में सुन्दरतापूर्वक दिये हुए हैं और गले में विविध प्रकार के पुष्पों की माला ऐसे सुशोभित हो रही है जैसे श्याम आकाश में श्वेत बादल की पंक्ति हो ॥ १५६ ॥

उष्णीषं शिरसिविभाति चन्द्रविम्बे
आदित्यं स्थिर मिव शीतलं मनोज्ञम् ।
साटीतत्तनौ सुभग विचित्र वर्णा,
सन्ध्येव स्फटतर रागवन्धरम्या ॥ १५७ ॥

अर्थ :—हे सखी प्रीतम के मस्तक पर पीले रंग के पाग कैसे सुशोभित हो रहा है मानों सूर्य भगवान मनोरम शीतल और स्थिर होकर चन्द्र बिम्ब के उपर विराजे हों और श्री प्रियाजु के श्री विग्रह में चित्र बिचित्र रंग के लाल किनारी वाली सुन्दर नील साड़ी मानां सायंकाल का समय साफ सुन्दर प्रतीत होती हो। १५७

पश्यालि वार्ता मधुरां विचित्रांमन्दस्मितं दन्तसुपंक्ति विद्युत्तिम् ।
स्वांताब्ज कोशं विकचं ययामें वभूव नारी नयनाब्ज कौशम् ॥ १५८ ॥

अर्थ :—हे सखी देखो विचित्र मधुर मीठी-मीठी बातों को करते हुए मन्द मुस्कानयुक्ती दन्तपंक्ति बिजली के सदृश चमक रही हैं। जो नारी मात्र के नेत्रकमलों को खिलाने वाली है जिससे मेरा हृदय कमल विकसित हो गया है। ॥ १५८ ॥

सुकर्णयोर्मानिनी रत्न कुण्डले ध्वजे सभीनाविव दर्पकस्य ।
करद्वयोः कंकण रत्नयुग्मं तथांगुली पंक्ति सरत्न मुद्रिका ॥ १५९ ॥

अर्थ :—हे मानिनी सुन्दर कानों में रत्नों के कुण्डल मानों कामदेव के ध्वजों में

दा मछली हों, दोनों हाथों में रत्नों के दो कंगण तथा अंगुलियोंकी छिपं में सुरत्नों की मुद्रिकाएं सुशोभीत हैं ॥ १५९ ॥

नखांशवः सुन्दरिभांति मंगलं नाना शशांका इव लक्ष्म हीनाः।
पठन्ति नाना रसकी विदास्तु सुशारिका मानिनी पादपञ्जरे ॥१६० ॥

अर्थ :—हे सुन्दरी, चरणों के अंगुलियों, नखों का मंगलमय प्रकाश ऐसा जान पड़ता है कि कलंक रहित वहुत से चन्द्रमा प्रकाशित हो रहे हों और हे मानिनी चरणों के नूपुर ऐसे प्रतीत होते हैं मानों नाना प्रकार की रस मर्मज्ञ सारिकायें चरण रूपी पिंजरों में बैठकर वेद पाठ कर रही हों ॥ १६० ॥

पपुर्मुहुस्ता नृपराजपुत्र मुखेन्दुविम्बं प्रियरागमत्ताः।
सुलोचनाभ्यां शिववृष्टि युक्तं तत्स्वस्ति पात्रं विदधुः कटाक्षम ॥१६१॥

अर्थ :—श्री प्रीतम के अनुराग से मत्त हुई वे सखियाँ चक्रवर्ती राज कुमार के मुखचन्द्र विम्ब के अमृत को वारम्बार पान करती हैं और नेत्रों से कल्याण की वृष्टि करती हुई अपने कटाक्षों को कल्याण की पात्रता का विधान करती हैं अर्थात् अपने अनुरागमयी भावों को पूर्ण करती हैं (मन हीं मन राइलोन उतारती तथा वलैया लेती हैं।) ॥ १६१ ॥

सीतां सशीतां ललितं निरीक्ष्य रामं सुवामं ललितं मनोज्ञे।
निध्वाख्यरम्यो पवने निकुञ्जे सखीमनश्चौर किशोर मेकम ॥ १६२ ॥

अर्थ :—हे मनोज्ञे! उस निधुकानन नामक रमणीय उपवन के निकुञ्ज में सखियों के मन को चुराने वाले किशोर सुन्दर अद्वितीय ललित श्रीरामजी को और सुशीता शीतल, सरल स्वभाव वाली श्री जनकनन्दिनी जी को देख कर······ ॥ १६२ ॥

द्वंद्वं तयोः श्री ललितं शशांकं निध्वाख्यकुञ्जे शुभगां तरीक्षे।
सखीगणश्चोडुगणो बभूव स्तीक्ष्णे तीव्र तमानुरागे ॥ १६३ ॥

अर्थ :—अत्यन्त तीव्रतम् अनुराग में विमत्त होकर उस विलास वन के कुञ्ज को अति सुन्दर आकाश की उपमा देकर एक सखी कहती है कि हे सखि देखो प्रिया प्रीतम के दोनों मुख दो चन्द्रमा हैं और सब सखियाँ तारामण्डल हैं और सब सखियों के अत्यन्त विलासपूर्ण कटाक्ष हों, मानों ताराओं का अनुराग चन्द्रमा से हो रहा हो ॥ १६३ ॥

युक्तानयुक्ता भुजमंडलीतौ मेलं प्रमेलं हृदिमंजुकंठे।
सुघूर्ण नेत्रौ सखि जृम्भमाणौ वभूवतुः प्रीततरौ प्रकामम ॥ १६४ ॥

अर्थ :—हे सखि प्रियाप्रीतम जू मनोनुकूल अनुराग से मत्त होकर जमुहाई लेते हुए दोनों के नेत्र घुम रहे हैं। कभी भुज पास में एक दूसरे को आबद्ध करते हैं और कभी छोड़ देते हैं। पुनः परस्पर हृदय से हृदय को गाढ़ आलिंगन करते हैं पुनः सुन्दर कंठ से कंठ मिलाते हैं इस प्रकार दोनों सरकार अनुरागमयी लीला कर रहे हैं ॥ १६४ ॥

भाति प्रियोत्संगगता किशोरी नृपात्मजा मंजुलगात्ररम्या।
तत्पर्परूपं नपीबन्न खंडं दिव्यात्म सद्वैभव सागरोऽयम ॥ १६५ ॥

अर्थ :—किशोरी अवस्था सम्पन्ना अत्यन्त रमणीय सुन्दर श्री विग्रह वाली राजकुमारी श्री वैदेही जी अपने प्रीतम की गोद में अत्यन्त प्रकाशित हो रही हैं। श्री प्रीतमजू भी ये मेरी आत्मा के अखण्ड दिव्य सद्वैभव की सागर हैं—ऐसा मानकर उस सौन्दर्य रूपसुधारस को पान करते हुए तृप्त नहीं होते हैं ॥ १६५ ॥

सखीगणा मंगलभोग वृन्दान्यानि न्यूरावास्य जलानिरम्याः
पाकरसं स्वादु तरं तुश्वाप निकुञ्जलीनाः सुवहुप्रकारम् ॥ १६६ ॥

अर्थ :—युगल सरकार को पर्यङ्क पर बैठे देख कर सखियाँ अनेक प्रकार मंगल भोग की वस्तुओं को और सुगन्धित सरयू जल सुस्वादिष्ट रसीले बहुत से पदार्थों को लेकर शयन कुञ्ज में आईं ॥ १६६ ॥

पीठानिनाना मणिहेम रत्न मयानि नाना चषकाणि काश्चित्।
पात्राणि चान्यानि शशिप्रभानि भृङ्गार काण्यद्भुत कान्ति मन्ति ॥१६७॥

अर्थ :—कोई सखी अनेक प्रकार के सुवर्ण, मणि रत्नमय पीढ़ा स्टूलादि ले आईं और कोई चन्द्रमा के सदृश प्रकाशमान पात्र गिलाश तस्तरी आदि को तथा अद्भुत्त प्रकाश कान्ति वाले झारियों को लेकर आईं ॥ १६७ ॥

सखिजनोत्संग गतौ विरेजतुः सखीषु यन् मंगल भोगलोलौ।
सर्व्योऽपि रूपामृत दृष्टि हास सुपानमत्ता रसचन्द्र कान्ताः ॥ १६८ ॥

अर्थ :—युगल सरकार सखियों की गोद में बैठे हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं, वे दोनों सखियों के अनुरागमय मंगल भोग को पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक चंचल हो रहे हैं, और सखियाँ भी चन्द्र किरण सदृश हास, बिलास, कटाक्ष रस रूप अमृत को पान करने में अति ही प्रवीणा मत्त हैं ॥ १६८ ॥

माधुर्यता स्वाचमनं विधाय पुनश्च सख्योऽपि सुगन्धवारिणा।
अंगेषु नाना सुरभीनि गंध द्रव्याणि केशे लिलिपुस्स लीलम ।। १६९ ।।

अर्थ :—सो सखियाँ भी सुगन्धित जल से मधुर्य का स्वाद लेती हुई आचमन कराई और हास विलास विनोद पूर्वक अनेक सुगन्धित तेल आदि द्रव्यों को अंगों में तथा बालों में लगायी ।। १६९ ।।

एलादि कर्पूर लवंगपूग विमिश्र ताम्बूल दलं च खाद् ।
सीमन्तपूर्तें किमुवा प्रियायाः सिन्दूरसूक्तिं विदधेविचित्राम् ।। १७० ।।

अर्थ :—इलाइची, कपूर, लौंग और सुपाड़ी आदि सुगन्धित पदार्थों से मिश्रित पान के बीड़ा दोनों सरकार पारहे हैं। दोनों के अधरों को अरुणाई ऐसी लगती है मानो श्री किशोरी जी के मांग में सिन्दूर पूर्ति के लिये सिन्दूर की बिचित्र सुक्तिका बनाई गयी हों ।। १७० ।।

आन्दोलयनंक गतं युगं तं सख्यौ वभुश्चारु मुखाब्जभृग्यः ।
वारत्नराश्ना लवणाक्त पात्र्या उत्तारया मासुरधंहि दृष्टे :।। १७१ ।।

अर्थ :— अपनी गोदी को झूला बना कर सखियाँ दोनों प्रिया प्रीतमजी को झूला रहीं हैं और अपने नेत्रों को युगल सरकार के मुख कमलों में भ्रमरी बना दिये हैं। और अपनी ही दृष्टि दोष को निवारण के लिये राईलोन को लाल पात्र में उतारती हैं और वस्त्र रत्न आदि को न्योछावर कर के बलैया लेती हैं ।। १७१ ।।

ताः तूर्यवारं द्वयवारमेकं नीराजनं सप्त शुभंचचक्रुः ।
उत्तारयामासुरघंचपादे नाभौमुखे मंजुल गात्र बृन्दे ।। १७२ ।।

अर्थ :—वे सब सखियाँ दोनों सरकार के चरणों में, नाभि में और मुखारविन्द में चार वार, दो वार, एक वार आरती उतार कर पुनः सर्वाङ्ग में सात वार आरती उतार कर तब अर्घपाद्यादि देती हैं ।। १७२ ।।

चक्रुः पट्टप्रोंछनमङ्गरासौ मंचानिरेजुः सखिरत्नकुंजे ।
सखी जनोत्संगगतौ च तत्रस्वांदोलितोचारुसखीकटाक्षैः ।।१७३।।

अर्थ :—हे सखी, उसी रत्न कुञ्ज में सखियों के गोद रूप मंच पर दोनों प्रिया प्रीतमजू बैठ गये। सखियों के द्वारा अर्घ, पाद्य, आरती और वस्त्रों से अंगमार्जन आदि कृत्यों को स्वीकार कर पुनः उन्हीं के अंकों के झूला में बैठ कर उनके ही कटाक्षों से झूलाये गये हैं ॥ १७३ ।।

मन्दस्मितं कापि विशाल नेत्रा पुष्पाञ्जलीं साचिदृशाचकार ।
निर्मंछनंचापित्रणस्य खण्डमुताघ्र्यनीरं प्रपपौसमस्तम ।।१७४।।

अर्थ—कोई विशाल नेत्रवती सखी ने अपनी मन्द मुस्कान रूप पुष्पांजली दी और सुन्दर टेढ़ी कटाक्षों से अपने को न्यौछावर किया। तृण तोड़ा और जल को न्यौछावर करके सब जल को पी गयी ।। १७४ ।।

छत्रद्वयं मौक्तिकदाम युक्तं पश्यामृताश्राचि सुरत्नदण्डं ।
चन्द्रद्वयं मानिनि भक्ति हीनं मन्ये भ्रमंतं किलवात्र सुस्थिरम् । १७५ ॥

अर्थ :— हे सखी, देखो मोतियों के झालर युक्त रत्नों के दण्ड वाले दो छत्र ऐसे लगते हैं जैसे सुधा वृष्टि करते हुये दो चन्द्रमा हों, हे मानिनी मैं तो ऐसा मानती हूँ कि ये दो चन्द्रमा पहले भक्ति हीन होकर कातो संसार चक्र में घूमते थे अब श्री प्रिया प्रीतम जू की सेवा में आए तो स्थिर हो गए ॥ १७५ ॥

चन्द्रासखि चन्द्रकलाति रम्या रमासखि सा विमलापि चक्र्ः ।
क्रमेण चोभे शशिभे सुचामरे रूपानुरक्ताः प्रियराग रक्ताः ॥१७६॥

अर्थ :—दोनों सरकार सिंहासन पर विराजे हैं रूप में आसक्त हुई प्रेम से रंगी हुई चन्द्रा सखी ने श्री किशोरी जी को छत्र की हुई है । इसी क्रम से चन्द्रकला सखी श्री प्रीतम को छत्र धारण की हैं । इसी तरह से चन्द्रमा के किरण-सदृश दो चमरों को अति रमणीया श्री रमा सखी और श्री विमला सखी जी कर रही हैं ॥१७६॥

सा श्री प्रसादा जनकात्मजायाः सखी च रामस्य च चारुशीला ।
चक्रेस्म बालव्यजनं विनोदात् सरत्न दण्डं शुभगं सुरम्यम् ॥१७७॥

अर्थ :—श्री जनकात्मजाजी की सखियों में प्रधाना श्री प्रसादा नाम की सखी और श्री रामजी की सखियों में प्रधाना श्री चारुशीला नाम की सखी ये दोनों सखियाँ श्री युगल सरकार से विनोद करती हुई अति सुन्दर रत्नजड़ित दण्ड वाले बाल व्यजन दोनों सरकारों को कर रही हैं ॥ १७७ ॥

सखीगणास्सुन्दरी राजसंपद् मादाय तस्थुः परितः सुवेषाः ।
तडिद्घनं चापि गणं शुभानां सचक्रचापा स्तडिता स्थिराइव ॥१७८॥

अर्थ :—हे सुन्दरी ! युगल सरकार के यह राजकीय बैठक की झाँकी है जिसमें चारों तरफ सखियों के समूह राजकीय वैभव विलास वस्तुओं को ली हुई सुन्दर राजकीय श्रृङ्गार युक्त होकर विराजी हैं । ऐसा लगता है कि विद्युत और घन के चारों तरफ चक्र और धनुषों को ली हुई अत्यन्त सुन्दरी विद्युत माला स्थिर हो कर खड़ी हों ॥ १७८ ॥

द्वयं द्वयं काश्चनदर्पणानां द्राक्षाफलानांच ददुस्तथान्याः ।
पतंगयुग्मं धनुषां शराणां द्वयं द्वयं काम सुतेजितानाम् ॥१७९॥

अर्थ :—कोई सखी युगल सरकार को दो दो दर्पण दिखा रही है । कोई सखी मुनका खाने के लिये दे रही हैं और कोई सखी दो पतंगों को दे रही हैं और कोई सखी काम रूपी सांण से सुतीक्ष्ण किये हुए दो धनुषों के साथ बाणों को दे रही हैं ॥ १७९ ॥

ददुः पराश्चित्र मृगं विधुस्थं मनोहरं कामिनि कामरूपिणम् ।
तथा परा काञ्चन वल्लरीं शुभां सकंजरत्नां विधुवृन्द मण्डिताम ॥१८०॥

अर्थ :—कोई सखी इच्छामयी रूप धारण करने वाले शशि में रहने वाले मनोहर चित्र विचित्र के दो मृगों को दे रही हैं और हे कामिनि ? कोई सखी रत्नों से बने हुए सुन्दर कमल वाले और चन्द्रमा के समूह से भूषित सुन्दर सुवर्ण की लता को दे रही हैं। (यहाँ सखियाँ अपने ही श्री विग्रह को रूपकों द्वारा युगल सरकार के लिए अर्पण कर रही हैं।) ॥ १८० ॥

रत्नपंजरखगाः सखीगणा स्तीव्रराग मुदिता जगुः कलम्।
श्री नृपात्मजेजये सु सुव्रते मैथिलेशतनये जयेतिच ॥१८१॥

अर्थ :—सुन्दर रत्नों के बने हुए पींजरों में अनेक पक्षी तथा इसी प्रकार सेवकी सखी समूह भी युगल सरकार के सुतीव्र अनुराग में आनन्दित होकर सुन्दर स्वर से गा रहे हैं। इस गान में कहती हैं कि हे श्री महाराज कन्ये, आपकी जय हो हे सुन्दर व्रत वाली, मिथिलेश राज कुमारी जी आपकी जय हो ॥ १८१ ॥

सुन्दरेन्द्रमणिकामद प्रिय सूर्यवंशशशिलोक रञ्जन।
जानकी भुवन मीन भोजये चारुपंक्तिरथकामजीवन ॥१८२॥

अर्थ :—हे नीलमणि के समान सुन्दर विग्रह वाले, हे सब के मनोरथ को पूर्ण करने वाले, हे सूर्यवंश के प्रिय, हे समस्त लोकों को प्रसन्न करने वाले चन्द्रमा और हे जानकी जी रूपी सुन्दर सरोवर के मीन, हे चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के जीवन के सुन्दर मनोरथ श्रीराम आपकी जय हो ॥ १८२ ॥

राजनन्दिनिजयाशु सुव्रते नारीवृन्द हृदयेशि धर्मये।
भक्तचित्त तनुवाग सुक्षणे कान्त चन्द्र सुचकोरि सुन्दरि ॥१८३॥

अर्थ :—हे सुन्दर व्रतवाली राजनन्दिनी जी, हे नारीसमूह की धर्म पूर्ण स्वामिनी जी ? भक्तों के चित्त के भीतर स्व स्वरूप रूपी बाग में सुन्दर कृपा कटाक्ष करने वाली। हे प्रीतम के मुखचन्द्र की चकोरी, हे सुन्दरी आप की शीघ्र जय हो।१८३।

केलिपल्लवल मनोज्ञ हंसक मैथिली विधुचकोर मानद।
रूपसिन्धु रसमीन मानीनो मानमत गजसिंह भोजय ॥१८४॥

अर्थ :—हे विलास रूपी (तडाग) तालाब के मनरमणीय हंस, हे मैथिली रूपी शशि के चकोर, हे रूप रूपी समुद्र की रसिक मछली, हे मानिनियों के मानरूपी हाथी के मद को मंथन करने वाले सिंह, हे सब को आदर देने वाले श्रीराम आपकी जय हो ॥ १८४ ॥

भर्तृनील घन केकि चातकि नारिकेलि रसदक्षिणे जये।
केलिचित्र घन दाममालिनि सिन्धुजात वरचन्द्र कौमुदि ॥१८५॥

अर्थ :—प्रीतम रूपी नीलमेघ के हे मयूर, हे स्वाति मेघ की चातकी, हे नायिका केलि रस की पंडिता, हे विचित्र विलास समूह को क्रमसः अनुभव में लाने के लिए विलास रूपी पुष्पमाल बनाने वाली मालिनी। हे सरदपूर्ण चन्द्र के सदृश मुखचन्द्र

वाले अद्भुत चन्द्रमा रूपी प्रीतम को प्रकाश करने वाली स्वामिनी आपको जय हो ।। १८५ ।।

जानकी सुभग रूप सागर भंगकूर्दन। नितम्बिनीपटो।
राजराज वरसिन्धु चन्द्र सद्रुप सागर जयाशु राघवः ।।१८६।।

अर्थ :—श्री जानकी जी के सुन्दर रुप समुद्र की तरंगों में कूदने-गूदने वाले, सुन्दर नितम्ब वालियों के मनोरथ पूर्ण करने में चतुर, हे राज राजेश्वर, सुन्दररूप समुद्र के अद्भुत चन्द्र, हे रस के सागर, हे राघव आपकी शीघ्र ही जय हो ।। १८६ ।।

रामचन्द्र नयनारविन्दयोः कोटि सूर्यसमकान्तिपुञ्जके ।
प्राणनाथहृदयेशि जानकि मैथिलेश कुलभूषणे जये ।।१८७।।

अर्थ :—श्री रामचन्द्र जी के दोनों नेत्र कमलों के लिये करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाली प्राणनाथ की हृदयेश्वरी श्री स्वामिनी, हे मिथिलेश कुल भूषण स्वरूपा श्री जानकी जी आपकी जय हो ।। १८७ ।।

जय जयरमणी नयनाब्जरवे प्रियनाथ,
नितम्बवति दयिता सुधव।
जय जय कमला करलालितपादसरोरुह,
मानिनि राम विनोद वरे ।।१८८।।

अर्थ :—हे रमणि के नेत्रकमलों के सूर्य, सुन्दर नितम्ब वाली प्रियाओं के चतुर स्वामि, हे प्रिय हे नाथ आपकी जय हो जय हो, हे लक्ष्मी जी के करकमलों से ललित चरण कमल वाली श्री रामजी के विलास विनोद कार्यों में सर्वोत्तमा, हे मानवती हे स्वामिनी जी आपकी सदा ही जय हो, जय हो ।। १८८ ।।

जय जय रसराजसुधावपुसाश्रु
दृगंचल शोभि मुखाब्ज विलास कर।
जय जय पति लालितगात्रि,
विशालविलोचनि मंजु मुखाब्ज दलेशुभगे ।।१८९।।

अर्थ :—हे श्री प्रियाजी के मुखकमल के भ्रमर स्वरूप शृङ्गार रस रूप अमृत समुद्र सदृश श्री विग्रह वाले, हे भक्तों के दुःख से द्रवित साश्रु नेत्र वाले (ब्रह्माजी की तपस्या को देख कर कारुण्य पूर्ण नेत्रों से नेत्रजा श्री सरयू जी को उत्पन्न करने वाले ।) हे श्रीराम आपकी जय हो, जय हो । हे कमल सदृश मुखवाली, हे विशाल नेत्रवती तथा प्रीतम से लाड़प्यार की गयी विग्रहवाली सौभाग्य की परा-सीमा, हे श्री स्वामिनी जी आपकी जय हो, जय हो ।। १८९ ।।

ताम्बुलरंजित मुखे रस राज सिन्धु पीयूष गात्रि सखिभूमिसुते प्रसीद।
रामप्रसीददयितामुखपानलोल श्री राजराजवरराजकुमार कान्त ।।१९०।।

अर्थ :—हे शृङ्गार रस की समुद्रभूता अमृतमय श्री विग्रहवाली, हे ताम्बुलराग से

रंजित मुखकमल वाली, हे भूमिसुते, हे सखि आप हम सब के प्रति प्रसन्न हो जाइये, हे श्री राजराजेश्वर श्री प्रियाजी के मुखारविन्द के चंचरिक, हे राजकुमार, हे कान्त, हे राम ! हम सब के प्रति प्रसन्न हो जायँ ॥ १९० ॥

श्रीरामजानकी भवच्छु भरूपतस्तल्लोकादिधार पटवः सततंनिमेषाः ।
यस्माद्भवन्ति वतकल्पसमाः प्रसीद सर्वस्वमत्रभवतामपि नो निकामम्
॥१६१॥

अर्थ :—जिनके पलक के इशारों से अर्थात् इच्छा से और अपनी शारीरिक कान्ति से अनन्त विश्व और विश्व के रचयिता ब्रह्मादिक चतुर उत्पन्न होते हैं ऐसे हे प्रिया प्रीतमजु आप दोनों के दर्शन के बिना हम सब सखियों को प्रतिक्षण कल्पों के समान प्रतीत होता है, इस जगत में हमारे जो कुछ भी वैभव सम्पत्ति हैं वे सर्व-सर्वस्व आप दोनों के लिये हीं न्यौछावर है, हे श्री रामजी, हे श्री जानकीजी आप हम सबके प्रति प्रसन्न हो जायँ ॥ १९१ ॥

स्त्रीणांमनस्सु विजहार नृपेन्द्रबालों, नार्योऽपिरामहृदये सुभगाविजहुः ।
कुंसंगपालनथतद्दृशुः स्मरातश्चिक्रमंहान्तमपि फल्गुसुखंहिमुक्तेः॥१६२॥

अर्थ :—श्री चक्रवर्ती कुमार को स्त्रियों के मन में विहार करते हुए और सुन्दरी नायिकाओं को भो श्री रामजी के हृदय में विहार करते हुये और किसी कुन्ज में प्रियाजी के गोद में अनुरागपूर्ण भरे हुये प्रीतम को देख कर, मुक्ति का सुख महान होते हुए भी, युगल सरकार के अनुराग में अर्तताबस उस मुक्ति सुख को व्यर्थ कर दिया ॥ १९२ ॥

सोंणाधरं मृदुपपावलकानि कापि संसाधयन् करसरोरुह युग्मपत्रैः ।
वस्त्राणि भूषणगणानि विहाय कान्त स्कंन्धे चकार रमणी सुभुजंच काचित्
॥ १६३ ॥

अर्थ :—कोई सखी अपने कर कमलों के दो दलों से सुकोमल अलकों को सुधारती हुई और अरुण अधरों के रश सुधा पान कर रही है और कोई सुन्दरी नायिका अपने वस्त्र भूषणों की सुधि छोड़ कर प्रीतम के कंधे पर अपने सुभुजदण्ड को रख देती हैं ॥ १९३ ॥

काचित्कपोलयुगलंदयितस्य रामा कामंचुचुम्ब मिलिता लपितंहिकर्णे ।
श्रीराजपुत्र गुरुपौरजनं सुमानं त्यक्त्वावरेण्य विचरेत् सततसमन्ते ॥१६४॥

अर्थ :—कोई प्रीतम की अनन्य प्रिया रमणी मनमाना गले से मिलकर कान में कुछ कहती हुई दोनों कपोलों को चुमती है और कहती है कि हे राजपुत्र, हे सर्वोत्तम पुरुष, गुरुजनों के तथा पुरजनों की मान प्रतिष्ठा को छोड़ कर जो हमेशा आप के साथ विचरें वही श्रेष्ठ है ॥ १९४ ॥

लाज्जां कुलंपति सुहृत्स्वजनप्रसंग धर्म व्रतादिनियमादि गणंचधिग्धिक् ।
संज्ञन ते यदि वृथा सकलं वतैतद्ज्ञानादि जम्भधर्मादिभिरर्थितंयत् ॥१६५॥

अर्थ :—कुल की लज्जा तथा पतिव्रतादि धर्म और स्वजनों की मर्यादा और तीर्थ, व्रत दानादि यम नियमादिक साधन सबसे यदि आपको प्रेम नहीं है तो इन सबों को धिक्कार ही है, ज्ञानादि साधन तथा जन्म कर्मादिक धर्म इन धर्मों से सिद्ध होनेवाले जो फल आदि से आपको अनुराग नहीं है तो वे सब व्यर्थ हैं ॥ १९५ ॥

शय्यां विहाय ललितौ मदघूर्ण नेत्रौ,
संज्जमतुः सुगजसिंह गतिस्सलीलम ।
सन्मन्मथौ भुजलतां मृदुलां,
विधायान्यौन्यांसके सुरल रागरसेन मत्तौ ॥१९६॥

अर्थ :—अब युगल सरकार निधुवन कुंज से चलते हैं। अनुराग के मद से घूमे हुए नेत्रवाले दोनों अति सुन्दर प्रियाप्रीतमजू पर्यङ्क को छोड़ कर लीलापूर्वक मद-मत्त गज तथा सिंह की सी चाल से चले। कोमल भुजलताओं से परस्पर गलबाहीं देकर दिव्य रति काम के सदृश परस्पर स्नेह राग के रसमें उन्मत्त होकर वहाँ से चले ॥ १९६ ॥

उष्णीसमस्यंललने रुचिरं विभाति,
तद्रत्नमंजरियुगं किलरत्नगुच्छाम् ।
शीर्षेथ रत्नखचित कलधौतपट्टं,
ताम्बूल रंञ्जित मुखं ललनाभिलाषम् ॥१९७॥

अर्थ :—हे ललने श्री प्रीतम के शिर में सुन्दर पाग जिसमें रत्नों से जड़ित दो तुर्रे और मोतियों के दो गुच्छे लगे हैं देखो कैसा सुन्दर शोभा दे रहा है, उसमें भी सुवर्ण का रत्न रचित पट्टा लगा हुआ शोभित है। और समस्त ललनाओं की अभिलाषा बढ़ानेवाला पान के बीड़ा ने अधरों को लाल कर दिया है ॥ १९७ ॥

पश्यालिकर्णयुगलं मणिकुण्डलं,
स्वंभातौ विशाल शुचिवर्तुलगण्डमग्ने ।
स्नेहार्द्र गंध सुरोभीन्यलकाभिभान्ति,
नारीनिमेष पटुचौरसमानिकामम् ॥ १९८ ॥

अर्थ :—हे आलि, तुम कानों के मणिकुण्डलों को देखो वे अपने प्रकाश से दोनों गोल कपोलों में बूड़े हुए कैसे सुन्दर प्रकाशित हो रहे हैं। (अर्थात् प्रकाशमान कुण्डलों का प्रति बिम्ब दर्पण सदृश कपोलों में झलक रहा है।) और अबलाओं के पलकों को मनमाना चुराने वाले सुगन्धित तेल फुलेलादि से भीजे हुए आर्द्र अलकें झलक रही हैं ॥ १९८ ॥

कर्णान्तिलम्बि नयने सरसे च रामा मूल्यं
बिना चतुरिमाक्रीयेत्तेऽसुदास्यः ।
मुक्ता नक्का नृपकुमार मनोज्ञवाचं
श्रुत्वा भवेज्जगति चित्र पदां वयस्ये ॥ १९९ ॥

अर्थ :—हे चतुरी ! कान तक लम्बे विशाल अत्यन्त रसीले श्री प्रीतम के दो नेत्र हम रामागणों को बिना मूल्य के ही खरीद कर अपनी दासी बना लेते हैं। और इन चक्रवर्ती राजकुमार की मन रमणीय बाणियों को सुन कर कौन गूंगी न हो जायगी। और इनके शब्दों में विचित्र पदों का अर्थ समझ कर के जगत के सभी प्राणी समाधिस्थ हो जायेंगे ।। १९९ ।।

श्री राघवं परमहंस यतीन्द्र मुख्या नार्योऽभंवन
सखि विमोह वशाश्च दृष्ट्वा ।
तेराक्षसाश्च मुमुहः किलकामिनीनां
पुंषां कथैवननुका रसराज मूर्तिम् ॥ २०० ॥

अर्थ :—श्री राघवजी को देख कर यतीन्द्र मुख्य परमहंस भी नारी होकर श्रीप्रीतम के मोह में पड़कर के आधीन हो जाते हैं और वे खरदूषणादिक राक्षस भी इनके सौन्दर्य में मोहित हो जाते हैं तो हे सखी, हे रसराज की मूर्ति प्रीतम को देखकर हम कामिनी तथा अन्य पुरुषों को तो बात ही क्या है ।। २०० ।।

दृष्ट्वा सुरम्यं निजरूप मद्भुतं शिलातले कांचन ज्योति निर्मले।
मुमोह रामो रघुवंश भूषणः सींतेव स्वालिंगन भाव मश्नुते ।।२०१।।

अर्थ :—हे सखी ! सूवर्ण के समान प्रकाशमान निर्मल स्फटिक मणी के पत्थर पर अपने अद्भुत सुन्दर रमणीय प्रतिबिम्ब के रूप को देख कर रघुबंश भूषण स्वरूप से श्री प्रीतमजी स्वयं मोहित होकर अपने में सीताजी की भावनाकके अपने प्रतिबिम्ब से आलिंगन करके आनन्द लेते हैं तो फिर औरों की तो अर्थात् हमलोगों की तो बात ही क्या है (हम सब तो स्वतः उन्हें देख कर मोहित हो जाती हैं।) ।। २०१ ।।

अहोतिरूपं परमं मनोहरं ममापि यन् मोह करं सुखावहम ।
मत्तोप्रियाभाग मतीवगौरवं यालिंगनानन्द मवाय मग्दुतम् ।।२०२।।

अर्थ :—अहो आश्चर्य है कि यह मेरा रूप अत्यन्त सुखदायी मुझको भी मोहित करने वाला है तभी तो मुझसे भी अत्यधिक भाग्यशाली मेरी प्रिया का भाग्य है जो इस परम मनोहर रूप को आलिंगन करके दुर्लभ आनन्द को प्राप्त करती है।। २०२ ।।

निजेसुरूपे लाति कादि मोहने यदा मुमोहाशु मनोज सुन्दरः।
तदा कथा का प्रादा गणानां चित्तेषु यासां प्रविशेच्च मन्मथः ।।२०३।।

अर्थ :—हे सखि वृक्षलताओं कोभी मोहित करने वाले कामदेव से भी अधिक सुन्दर श्री प्रीतमजू जब वे ही अपने सुन्दर रूप में शीघ्र मोहित हो गये तो फिर जिनके चित्त में कामदेव सदा प्रवेश करता ही रहता है ऐसी प्रमदागणों की बात को कहना हीं क्या है ।। २०३ ।।

पादौस्खलन वसुमतीमभितोदधार,

मत्तः प्रियाधर सुधा रस पानतश्च ।

धुर्णन् रमनवयवैरलसै र्वभौ श्री नेत्रोत्सवे

सखि चलल्ललिते निकुंजे ।।२०४।।

अर्थः—हे सखि ! नेत्रों के उत्सवभूत श्री प्रीतमजू सुमनोहर निकुञ्ज में अलसाये हुए श्री विग्रह से रमण करते हुए जब अङ्गड़ाई लेते हैं और लड़खड़ाते हुए पादारबिन्द जब उस विलासभूमि में रखते हैं तथा श्री प्रियाजी के अधर सुधा रस पान करके अत्यन्त आनन्दित हो जाते हैं तब उस समय की झांकी झाँकते ही बनता है ।। २०४ ।।

तौस्नेहथार विवशौ मुखपान रक्ता

वन्योन्य वाहुलतिका कृतकंठमालौ ।

संदृश्यतः पथिसखीभि रहो विचित्रे-

स्सौदामिनीथिखि खेतड़ितम्बुवाहौ ।।२०५।।

अर्थ :—दोनों प्रियाप्रीतमजू परस्पर पान चबा कर लाल मुख करके प्रेम के बोझे से परवश होकर भुजलताओं से परस्पर कंठ माला बनती हैं तो उस समय मार्ग में सखियों की भीड़ से घिरे हुये ऐसे सुशोभित होते हैं जैसे आकाश में हजारों बिजलियों से घिरे हुये अद्‌भुत मेघ और बिजली प्रकाश कर रहे हों ।। २०५ ।।

ताःसच्चियदानन्दमयाश्चनित्याबाला किशोरीलतिकाः सुरम्याः ।

प्रियस्यकंठे मिलितास्मरार्ता विचित्रमेतत्सखिराघरूपे २०६।

अर्थ :—हे सखि ! नित्य सच्चिदानन्द वह प्रमदा वाग बन के बाल और किशोर अवस्थावाली वे सुन्दर रमणीय लतिकाऐं भी जब काम से आर्त होकर प्रीतम के कंठ से मिलने लगती हैं तो यह श्री रघुनाथ जी के रूप की अत्यन्त विचित्रता है ।। २०६ ।।

पीताम्बरं कटितटे सुदृढं निवध्य संगच्छते

सखियदा कुटिलं मनोझे ।

जहे तनू च परिपातयते हृदस्तु मत्तो

न निर्गमति मानिनि किं करोमि ।।२०७।।

अर्थ :—हे सखि—जिस समय रमणीय कटितट में पीताम्बर को सुदृढ़ता से बाँध कर कुटिल चाल से चलने लगते हैं तो हे मन रमणी, हे मानिनि ! मेरा शरीर अपने वश में नहीं रहता बलात वे अपने वश में कर लेते हैं मेरे हृदय से वे नहीं निकलते हैं तो मैं क्या करू ।। २०७ ।।

वीक्षणं मुखसरोज सम्पदो नेत्रतामरस युग्मयोरिव ।

लोकनं सुमुखि साचि मानिनि किं करमिजड़ चैत्य मोहकम ।।२०८।।

अर्थ :— लाल कमल सदृश दो नेत्रों के कटाक्ष तो प्रीतम के मुखकमल की सम्पत्ति हीं है तब हे मानिनी; जड़ चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत को मोहित करने वाले उन प्रीतम की टेढ़ी कटाक्ष मेरे हृदय में चुभ गयी है, मैं क्या करूँ ? हे सुमुखी ! तुम ही उपाय बताओ ।। २०८ ।।

रामचन्द्र मुख चन्द्र मण्डलं वीक्ष्य कोटि विधवोऽपिमन्दताम ।
ते ययुः किलचकोर कामिनी भूयचारुललना सुधांपपुः ।।२०६।।

अर्थ :— श्री रामचन्द्र जी के मुख रूपी चन्द्र मण्डल को देख कर तो करोड़ों चन्द्रमा भी फीके पड़ गये हैं । ललनागणों के जितने भी समाज थे वे सब चकोर कामिनी चकोरी होकर प्रिय के मुखचन्द्र के पास जा कर अद्‌भुत सुधा रसास्वादन करने लगी ।। २०९ ।।

पादारविन्द मुखपद्मकरांग गन्धः
चच्छाद तद्वननिकुंजकुलान्तरीक्षम् ।
पद्मानि खटपदगणानिविहाय सख्यो
कुंजानि तौ रूरूधिरे सरसंसलीलम ।।२१०।।

अर्थ :—हे सखियों दोनों सरकार के चरण कमल, मुख कमल, कर कमल और सर्वाङ्ग श्री विग्रह की सुगन्ध इस बन निकुञ्जों में तथा आकाश दशों दिशाओं में भी फैल गयी । अब जितने अलिवृन्द (भौंरों के समूह) वे कलल आदि समस्त बन के सुगन्धित सुवासित रस को छोड़ कर वे उस कुञ्ज में पहुँचे जिस कुञ्ज में सरस सुलीला युक्त दोनों प्रिया प्रीतमजू विराजमान थे ।। २१० ।।

उत्सारयन् खेदमवाप लील नेत्राब्ज कोशस्तु सखी समूहः ।
मन्ये चकोराक्षि सुकाम दूताः गृहन्तिबाला दृढ़मान मत्ताः ।।२११।।

अर्थ :—हे चकोर नयनी, चञ्चल नेत्रा सखियाँ सब उस भ्रमर झुण्ड को भगाने से शिथिल हो गयीं । मालुम पड़ता है दृढ़मान में मतवाली बालाओं को सुकामदेव के दूत पकड़ रहे हों ।। २११ ।।

रामः प्रियां भीरूतमां विलोक्य जहासवक्षः कटिकंठ मग्नाम ।
इत्सारयामास च तान् लीनां पुंजान्रसज्ञो युवती गड़स्थान ।।२१२।।

अर्थ :—उन भ्रमरों के भय से प्रीतम के वक्षस्थल, कमर और कंठ में चिपकी हुई अत्यन्त भयभीता अपनी प्रिया को देख कर प्रीतमजू हंसने लगे और रसमर्मज्ञ प्रीतम युवती गणों के समूह में विलीन हुए उन भ्रमरों की भीड़ को भगा दिया ।। २१२ ।।

पस्पर्श कन्दर्प विनोदसद्म ववन्धनिवीं ललनाभि लालिताम् ।
चकर्ष नारी सुमनांसि रामो ववर्ष श्रृंगार रसं रसज्ञो ।।२१३।।

अर्थ :—श्री रामजी ललनाओं से अत्यन्त लालित कमर की नीवी को बाँधते हुए

विनोद सखका स्पर्श किये हे रसज्ञे, जिसको देख कर समस्त सखी वृन्द के मनमें श्रृंगार रस भर कर सब के मन को अपने में आकृष्ट कर लिया ॥ २१३ ॥

श्यामाचकोर नयनी श्रमविन्दुयुक्ता सीताबभौ सुरभिकोव्यजनं चकार।
प्रोञ्छन्मुखं किलददौ शुचिवीटिकां च संसाधयन सुमुखि कुंतलबृन्द शोभाम् ॥ २१४ ॥

अर्थ :— किशोरावस्था सम्पन्ना, घबड़ाये हुये से मुखारविन्द पसीना युक्त होकर चकोरीवत प्रीतम को देखती हुई श्री सीता जी को जब श्री प्रितम ने देखा तो सुगन्धित व्यञ्जन (पंखा) लेकर मुखारविन्द के श्रम-कण को पोंछ कर और मुख में पान का बीड़ा देकर मुख चन्द्रावृत अलकावली को सुधार कर मुख-चन्द्र की शोभा को देखते हुये हे सुमुखि ! प्रीतम पंखाकर रहे हैं देखो ॥ २१० ॥

सीतायाः कवरीं ववंधकिमुवा देवांगना साप्रिया,
श्रीरामः प्रमदा सुलोचन मनो मन्ये रति प्रेयसि।
स्नेहा कान्तमना प्रिया धर गतं दन्तक्षतं पश्यति।
कान्तप्रीतिमहो विलोक्य मुमुहुः सीता स्वरूपेक्षित्रयः ॥ २१५ ॥

अर्थ :— प्रमदाओं के सुन्दर नेत्र और मनः स्वरूप श्री रामजी श्री सीताजी के शिर के वालों की चोटी को बाँध रहे हैं। स्नेह से भीगी हुई मनवाली श्री प्रिया जी के अधरों में दन्तक्षत को देख रहे हैं। हे प्रिय सखि ! मैं तो इनको रति ही मानती हूँ. अहो, क्या ये देवाँगना हैं ? इस प्रकार कहती हुई सभी प्रमदागण श्री सीताजी के स्वरूप में प्रीतम के उस प्रकार के अनुराग को देख कर सब की सब मोहित हो रही हैं ॥ २१५ ॥

पश्यन्कुंजनिकुंज चारू लतिकास्तौ दम्पती कोमलौ
रम्यौ श्रीवनमालिनौ विचरतः साकं सखिभिर्भुजाम्
अन्योन्यांश तलेविधाय सरसंरेजुः श्रमाविन्दवो
मन्येहं मुखचन्द्रयोः सखिसुधा विन्दुश्चखेलंप्रिये ॥ २१६ ॥

अर्थ :— सुकोमल श्री विग्रह वाले बनमालादि को धारण किये हुये अत्यन्त रमणीये वे दोनों दम्पत्ति कुञ्ज निकुंजों की सुन्दर लताओं को देखते हुये उस विशाल शोभा सम्पन्न बाग में विचरण करते हुये परस्पर गलबाँह देकर अति रसज्ञ सखियों के साथ में खेल क्रीड़ा करते हुए चन्द्रमा सदृश दोनों के मुख चन्द्र में श्रमकण बिखर रहे हैं। हे सखि ! मैं तो उस पसीना के विन्दु को सुधा विन्दु ही मानती हूँ ॥ २१६ ॥

उत्थाय वाहुलतिकां सखि वक्ति सीतां
नामानि कामिनि विचित्र लता कुलानाम्।
नेत्रेच बिक्षिपति यर्हि नितम्बिनीनां
दृष्टिं मनो हरति कामकलाकुलानाम् ॥ २१७ ॥

अर्थ :—हे सखि श्री प्रीतयजू अपनी बाहुलता को उठा कर चित्र विचित्र लताओं के विविध प्रकार के निकुंजों को श्री सीताजी से उनके नामादि गुणों को कहते हैं तो हे कामिनी, उस समय प्रीतम के नेत्रों के विक्षेप को सुन्दर नितम्ब वाली काम पीड़ा से व्याकुल हुई सखियों की दृष्टि और मन सहज ही उनके अधिन हो जाते हैं ॥ २१७ ॥

पश्चाद्विलोक्य सखिसिंहगतिस्तु भूयोनारीषु
निक्षिपत्ति मानिनि काममंत्रम्
दत्वारतिं सुमुखि मुंचतिमानसंत्रीभूयोविमुंचति
गृहीत रतिःसुदक्ष ॥ २१८ ॥

अर्थ :—हे मानिनि सखि शेर की सी चाल से चलते हुए जब पीछे को ताकते हैं तो वे चाल ही हम सब के लिये काम मंत्र वत कार्य करता है हे सुन्दर मुखवाली हम सब के मन को लेकर सुन्दर अनुराग देकर अपना कर के सुचतुर प्रीतम फिर छोड़ देते हैं ॥ २१८ ॥

कन्दर्पकोटिसमकान्तिरलं च रामःश्यामः सुपश्यति तरूनथ पक्षिणश्च।
वृक्षाखगाः कुसुमबाण वशाभवन्ति कामं सदैव विनयं क्रियते रसज्ञे
॥ २१९ ॥

अर्थ :—हे रसमर्मज्ञा सखि, श्याम श्री विग्रह वाले श्री प्रीतमजू को श्री विग्रह की शोभा करोड़ों कामदेवों के समान प्रकाशमान है। सो ये प्रीतम वृक्षों को और पक्षियों को अथवा जहाँ कहीं भी दृष्टिदेते हैं वहाँ के जितने भो वृक्षपक्षिआदि सब काम के बाणों के शिकार बन कर आपसे हमेशा विनय करते रहते हैं।२१९।

रामः प्रियेधरति पुष्पतलेषु पादौ मज्जन्ति पुष्पकलिकाः सुकुमारकोयं।
हा पुष्पचारू रस पुष्कल भूमिकुंजे हानिः पतेन्नसखिराघव राजचन्द्रः
॥ २२० ॥

अर्थ :—हे प्रिय सखि, प्राण प्यारे श्री प्रीतमजी के चरण कमल इतने सुकोमल हैं कि जब ये पुष्पों की कलियों पर चरण रखते हैं तब पुष्प कलियाँ भयभीत हो जाती है कि कहीं इनके चरणों में घाव न लग जाय। अतः वे दब जाती हैं। कोई सखी कहती है कि प्रीतम के कुंजों में आने के मार्ग में पुष्पपराग रस अधिक से अधिक बिखरा हुआ है। राजारूपी नक्षत्र मंडल के मध्य चन्द्रमा सदृश श्री रघुनाथजी के सुकोमल पादारविन्द निकुंज के मणिमय पुष्पाच्छादित भूमि में पड़ेगे तो वे फिसल कर गिर तो नहीं जायेंगे (यहाँ निकुंज की भूमि में पुष्पपराग की विशेषता बतलायी गयी है) ॥ २२० ॥

नारी विमोहनविचित्र निकुंजपुंजे माधेहिपादकमलं कुचभारनमे।
अङ्केहितिष्ठ मुख चन्द्रमलं निरीक्ष्य रम्यं सहस्त्र शुचिनूतन सुधांशु
पुंजम ॥ २२१ ॥

अर्थ :--हे नारियों को विमोहित करने वाले प्रीतमजी अपने श्री चरण कमलों को इस विचित्र कुंजों के समूह में न रखिये । आइये, हमारे वक्षस्थ के भार से नम्र अङ्कों में ही ठहरिये । हम लोग पवित्र नवीन हजारों चन्द्रमाओं के सदृश आप के रमणीय मुखचन्द्र को देख कर संतुष्ट होवेंगी ॥ २२१ ॥

श्रीरामचन्द्र रतिचन्द्र समोवभूष सर्वास्स् पश्चिमतमारसराज मंजुः ।
पस्वर्शे रश्मि करचारुतलैश्च सर्वाः कामंचकार सखिनाम यथार्थमेतम्
॥ २२२ ॥

अर्थ :—सखियों की पूर्वोक्ति बातों को सुन कर श्री प्रीतमजु ने देखा कि सब सखियाँ हमारे स्नेह में विभोर हैं, ऐसा विचार कर अपने निर्मल शृङ्गार रस रूप श्री विग्रह को चन्द्रमा के सदृश प्रकाशमान अनन्त रूप को फैला कर पश्चिम दिशा के अंधकार रूपी समस्त सखि समाज को अनन्त रूपों की बाहू रूप किरणों से सबको स्पर्श किया । जैसा आप का नाम श्री रामचन्द्र है उस रमणत्व राम चन्द्र नाम को सब के मनोरथ पूर्ण करने में यर्थार्थ कर दिया । अर्थात् एक एक रूप से सब सखियों को आप प्राप्त हुए ॥ २२२ ॥

श्यामोत्तमा वसति ते नयनाब्ज मध्ये हृत्पद्म
मानसतनौ कुटिलाङ्क पुष्पम् ।
तस्या स्तनौ हृदिमनो हृदयाब्ज कोशे मामा
विमोहय नृपात्मज व्यङ्गवादैः ॥ २२३ ॥

अर्थ :—हे राजकुमार आप इन टेढ़ी-मेढ़ी बातों से मुझको विमोहित मत कीजिये, मैं जानती हूँ कि आप के नेत्रों में वह उत्तम किशोरी निवास कर रही है और आपका मन उसी के हृदय में फंसा है यह बात आपके श्री विग्रह के टेढे-मेढे चिन्हों से ही प्रतीत हो रहा है तथा उस बाला के तन और मन आपके हृदय कमल में झलक रहे हैं ॥ २२३ ॥

तद्रङ्ग रंजित तनोः किलभाति कान्तिः तद्रागरंजितविलोल सुसुष्टुनेत्रौ ।
मत्तौचिभाति वनिता दलन प्रकामं तन्नानुयात परभाग दिवा निशत्वम्
॥ २२४ ॥

अर्थ :—आपके श्री विग्रह में उस बाला का रंग कैसा तो सुन्दर झलक रहा है । और आपके अति सुन्दर चंचल नेत्र उसके अनुराग से कितने सुन्दर कैसे सुन्दर लग रहे हैं । उस विनिता के मनमाने मर्दन करने में मतवाले आपके नेत्र कैसे तो चमकीले प्रकाश कर रहे हैं, जिसको पाकर आप रातदिन अपने को बड़े बड़भागी मान रहे हैं ॥ २२४ ॥

स्पृष्ट्वातु तां स्पृश न मां नृपराजपुत्र तस्या गृहं सरपटो शयन विधहि शाटों निरीक्ष्य शुचि मूर्ध्नि रदच्छदञ्चश्यामें प्रियोरसिसयावकराग
जालम् ॥ २२५ ॥

अर्थ :—हे प्रिय आपके पवित्र मस्तक में यह श्यामसड़ि को तो देखिये और मुख में दन्तक्षतों को तथा हृदय में महावर के रंग जाल को तो देखिये हे राजकुमार इस का स्पर्श करके फिर मुझको स्पर्श मत कीजिये। हेसरपटी जाइये उसी के घर में जाकर शयन का इन्तजाम कीजिये, जिसने आपको यह रंग जाल में फंसा रखा है ।। २२५ ।।

इत्थं निगद्यदयितंमणिदर्पणं तत्संदर्शयन्कुचयुगं शिषिचेतिपीनम् ।
चिन्हानि कामिनि विलोक्य सुलज्जितोभुदके दधाररमणी विरहातुशंताम्
।। २२६ ।।

अर्थ :—प्रीतम को इस प्रकार कह कर उन दन्त छदादि चिन्हों को मणि दर्पण में दिखाते हुए अपने पुष्ट बक्षोजों से प्रीतम को खींचा तो हे कामिनि ? प्रीतम भी स्वमुख चिन्हों को देख कर अति लज्जित होकर उस विरहातुर रमणी को अपने अङ्क में बैठाया ।। २२६ ।।

कंठेतबन्ध ललना भुजवल्लरीं तद्वक्षस्तताड़घनपीनकुचांकुशोंश्याम् ।
शैय्यानिवेश्यमणिहेममयीं सुखार्हा भुत्वापपौसुमुखिरामविधुं चकोरी
।। २२७ ।।

अर्थ :—हे सुमुखि, वह ललना भी अपनी भुजलताओं से प्रीतम को कण्ठ में बाँध दिया। अपनी पुष्ट उरोज रूपी दो अंकुशों से प्रीतम के वक्षस्थल में आघात किया और मणिमय सुवर्ण के पर्यङ्क में शयन कराकर अत्यन्त सुख स्वरूपा चकोरी हो कर श्री रामजी के मुखचन्द्र के अमृत को पान करने लगी ।। २२७ ।।

तल्पोपरिस्फुरदलाति गंभीरनाभी शेतेश्म चोरसिनिधायनृपेन्द्रसूनुम् ।
कण्ठेभुजौनबुबुधे स्वजनु मनश्च स्नेह प्रभूतरसभाररतिप्रमग्ना ।। २२८ ।।

अर्थ :—दोनों भुजाओं को गले में डाल कर श्री चक्रवर्ती कुमार को अपने हृदय से लगा कर पर्यङ्क पर अतिशय प्रकाशवति सुगंभीर नाभी वाली वह सखि स्नेह की अतिशयता से रति रस भार मग्न होकर अपने तन मन को भूल कर सो गयी ।। २२८ ।।

काचित्चुचुम्ब चरणौ विनिधायचांके पीनस्तनो परिदधारपुनःप्रकामम् ।
काचित्पपौप्रियशिरः सखिकोमलांकेकृत्वाधरंप्रीतमना निकामम् ।।२२९।।

अर्थ :—हे सखि कोई सखि श्री प्रीतम के श्री चरणों को गोद में रख कर पुनः अपने पुष्ट वक्षस्थल से लगा कर मनमाना अनुराग से चुम्बन कर और कोई प्रीतम के शिर को अपने गोद में रखकर अत्यन्त अनुराग से मनमाना अधर सुधा रसपान करती है ।। २२९ ।।

काचित्प्रियांककृतजानुयुगेदमूचे पार्श्वस्थितांवपुषितेसखि रत्नभूषाम् ।
कान्तस्तनौतितनुनेत्र युगान्तराले भीरूः प्रियः कलयतेहि स्वमेसिधन्याः
।। २३० ।।

अर्थ :—कोई सखि प्रीतम के गोद में दोनों जानुओं को धारण कर के प्रीतम को रमण कराती है तो उस दृश्य को देख कर बगल वाली कोई सखि कहती है कि हे सखि तुम्हारे अंग में श्री प्रीतमजु मणिमय भूषणों के विस्तार श्रृङ्गार कर रहे हैं और सुकोमलता को देख प्रीतम पुनः अतिमय पूर्वक आनन्द को प्रदान कर रहे हैं अति स्नेह वाले प्रीतम, शरीर में दोनों नेत्र तथा कण्ठ आदि मध्य भाग अंगों में अनेक प्रकार की चित्रकारी रचना करते हैं। अतः तुम धन्या हो॥ २३० ॥

रामोद्धार सखिकामपिमानिनीनांरवांकेनिधार्यचिबुके मृदुपंचसाखम् ।
सद् वीटिकां किलददौ व्यजने चकार पश्यन् मुखं मुदमवाप तयासनाथः
॥ २३१ ॥

अर्थ :—हे सखि मानिनियों के मध्य में किसी मानिनी को श्री प्रीतम ने अपने अंक में बैठा कर अपने सुकोमल कर कमल की पांचों अंगुलियों से प्रिया के चिबुक को पकड़ कर सुन्दर पान का बीड़ा मुख में दे रहे हैं और उस प्रिया के मुखचन्द्र को देख कर अपने को सनाथ मानते हुए आनन्द मग्न होकर उसे बाल व्यंजन कर रहे हैं ॥ २३१ ॥

सौन्दर्य तुष्ट हृदया ललना विधायो त्संगेतुकापिनृपराजसुतं मुखाब्जम् ।
पश्यन्निमेष पटलं च जहारतीव्ररागानुरक्तहृदयोत्थकुचासुमध्या ॥ २३२ ॥

अर्थ :—प्रीतम के सौन्दर्य से सन्तुष्ट पतली कमर वाली तीव्रानुरागी से बढ़े हृदय में उठे हुए वक्षस्थलवाली कोई ललना श्री चक्रवर्ती कुमार के मुख कमल को अपनी गोद में रख कर अनिमेष नेत्रों से देखने लगी ॥ २३२ ॥

काचितु रूप रससागर वीचिरम्या कान्ताधरं सखि पपौमृदुरम्य तल्पे ।
पीनस्तनीसरति रंगरतानितम्बा कान्तया जितामरबधू निचिया सुनेत्राः
॥ २३३ ॥

अर्थ :—हे सखी ! कोई अपनी रुप रस समुद्र की लहर सदृशा रमणीया स्वसौन्दर्य कान्ति से देवताओं की स्त्रियों पर विजय पाने वाली सुन्दर नेत्रवती, पुष्ट वक्ष-स्थल वाली रमणी कोमल रमणीय पर्यंक के ऊपर प्रीतम की अधर सुधा-रस पान कर रही है। २३३ ॥

आन्दोलयन्नंकतलेषु कामं श्री राजपुत्रं बनिता समूहाः ।
जगुः सुमन्दार निकुञ्ज पुजे साकं मयूरैः शुक कोकिलाभिः ॥ २३४ ॥

अर्थ :—सुन्दर मन्दार बन के निकुंज में सखियों के समूह श्री चकवर्ती राजकुमार को अपने अंकों में मनमाना झुलाते हुए मोर, शुक, कोयलादिक सहित सब सखियाँ प्रोतम के दिव्य गुणों को गाने लगीं ॥ २३४ ॥

काचित्तु जंघोपरि राजपुत्रं निवेश्य रम्यं वचनं तमूचे ।
त्वद्रूपसिन्धौ प्रियभूयमानौ संक्रीड़तां मानद लोचने मे ॥ २३५ ॥

अर्थ :—इसी प्रकार किसी कुंज में कोई सखि श्री चक्रवर्ती कुमार को अपनी जंघों पर बैठा कर उन प्रीतम को इश प्रकार रमणीय बचन से बोली कि हे मान देने वाले प्रीतम आपके रूप समुद्र में अनुराग रखने वाले मेरे दोनों नेत्रों के भीतर आप विलास कीजिए अर्थात् मेरे नेत्रों से पृथक न होइये ॥ २३५ ॥

काचित्सकुंजे वनितासु वेषं कान्तं चकाराथ विलोलनेत्रा ।
निवासयामासपपौमुखेन्दु मंकानतत्याज कदापिदक्ष्या ॥ २३६ ॥

अर्थ :—किसी सुन्दर कुञ्ज में कोई सखि प्रीतम को वनिता के शृङ्गार करके अपने चञ्चल नेत्रों से अपनी पर्यंक पर बैठा कर बड़ी चतुर वह सखी प्रीतम के मुखचन्द्र को अमृत पान करती हुई क्षण भर भी कभी त्याग नहीं करती है ॥ २३६ ॥

काचित्प्रियांकोपरिलाल्य मानाश्वासं मुमुंचाग्नि समन्तदुक्ता ।
यामीति वामांगुलिभूषणानि भूजे बभूवुः सखिमुर्च्छितासा ॥ २३७ ॥

अर्थ :—किसी सखी को प्रीतम अपनी गोद में बैठाकर लाड़-प्यार करते हुए, मैं (पिताजी के पास) जाता हूँ इतना प्रीतम के मुख से कहते ही वह सखी अपने स्वासों से अग्नि की ज्वाला फुंकारती हुई इतनी सूख गयी कि बाम हाथ की अंगुली की अंगूठी बाँह में चली गयी, वह बेहोस हो गयी फिर होस में आने पर कहती है ॥ २३७ ॥

श्रीराम प्रिय चितचोर सरसेतेनेत्र पद्मे मुहुर्निः
सीमं ममसानसं च हरतो दृष्टि नभोभाद्रयोः ।
जीमूतेभवतो वियोग मलिनेमेनेत्र पद्मे पुन प्राणाः
कान्त कृतान्त वेश्म गमनं वांछन्ति रूपेप्सवः ॥ २३८ ॥

अर्थ :—हे प्रिय, हे चितचोर, हे श्रीराम । आपके रसीले नेत्र कमलों में अगाध (निःसीम) मेरा मन ऐसा हरण हो गया है कि आपके वियोग में मेरे नेत्र भादों के बादल सदृश वर्षा कर रहे हैं । और आप के रूप की चाहना करने वाले मेरे प्राण आपके वियोग जन्य दुःख से तड़प कर यम सदन जाने को तत्पर हैं, अब आप जानें ॥ २३८ ॥

दिव्यानन्त निकुञ्ज पंक्तिषु तयोः कामातुराः कामिनीः,
पर्यङ्को परिचांक रत्नषु लता हीण्डोल पंक्तावुषः ।
चक्रुर्मंगल मेवमादि सरसं, चान्दोलयं दम्पत्ती,
सुद्धब्रह्मसुखं नितान्त मविदन्तुच्छं किशोरीः पुरम् ॥ २३९ ॥

अर्थ :—हे सखि इस प्रकार दिव्य अनन्त कुंजनिकुंजों के समूह में दोनों सरकार का सखियों के साथ परस्पर स्नेह आशक्तियुक्त कृत्यों से पर्यंकों के ऊपर कहीं अंगों के ऊपर और कहीं लताकुंजों में तथा विविध प्रकार विहार का सुख हिंडोला झूल रहे हैं और उसी झुलन लीला के साथ अनेक प्रकार के सरस हाव

भाव युक्त मंगल कृत्यों को भी करके झुलाने के गीतादि सुख के सामने ब्रह्म सुख को उन किशोर अवस्था सम्पन्ना युवती समाज ने नितान्त तुच्छ कर दिया है ॥ २३९ ॥

दिव्यानन्त विचित्र वैभवमहीपाल ब्रजा चक्रवर्तीन्द्रेन्द्र

न्द्रसुठिमौलि रत्न तनयो भोगान्य भुक्त ध्रवम

सानन्दं हरिचन्दन द्रुममये कुन्जेतुतौ दम्पती

स्वासातां शकुनिव्रजाः सुलतिकावृक्षे ष्वकुंज कलम ॥ २४० ॥

अर्थ :—दिव्य अनन्त विचित्र वैभव सम्पन्न जितने भी राजा हुए उन राज समूहों के मध्य में चक्रवर्ती तथा अनन्त काल से आज तक जितने भी चक्रवर्ती राजा हुए उन समस्त चक्रवर्तियों के शिर के मौर के मणि सदृश महाराज श्री दशरथजी हुए उन्हीं के सुपुत्र श्री रामजी ने निश्चयात्मक अनन्त भोगों को आनन्दपूर्वक भोग किया। उन्हीं के हरिचन्दन आदि दिव्य वृक्षों की अनेक कुंजें जिनमें अनेक प्रकार के पक्षी समूह सपत्निक होकर वृक्षलताओं में बैठकर अनेक प्रकार की बोलियों को बोल कर दोनों सरकार के गुणों को गाया, तो उन पक्षियों को दोनों सरकार ने अपना दिव्य आनन्द दिया ॥ २४० ॥

विभातिचिन्तामणि भूमिकुञ्जं सुमण्डप तत्र वितान जालैः ।

विलम्बिभिर्मौक्तिक दामवृन्दैः सजालरन्ध्रैः शशिकोटिमन्दैः ॥२४१॥

अर्थ :—उस बन की चिन्तामणिमय भूमि में अनेक कुंजों के मध्य एक सुन्दर मण्डप बना है, उस मण्डप में अनेक प्रकार के वितान तने हुए हैं बहुत सी मोतियों की लड़ झुल रही है, चारों तरफ सुन्दर झरोखे और जालियाँ हैं जिनको देख कर करोड़ों चन्द्रमा फीके पड़ते हैं ॥ २४१ ॥

रक्तोपधानं सखि कोमलेन्द्र गोप प्रतीकाश मिदं तदासनम् ।

विभाति कामं मृदु पक्षि पक्ष पूर्ण रमा कामित मुच्चकैश्च ॥ २४२ ॥

अर्थ :—हे सखि! उस दिव्य राजमण्डप के भीतर एक उच्च राज सिंहासन है, जिसमें अति सुन्दर कोमल लाल रङ्ग का बूटेदार बिछावन बिछा है मालुम पड़ता है कि बीरबहूटी नृत्य कर रही हों, उसके ऊपर कोमल पक्षियों के पाँखों का बिछावन बिछा है, जिसकी शोभा पर श्री लक्ष्मी जी ललच रही हों, इसी प्रकार सुन्दर मसलन्द गीण्ड्वा तकिया जरी के कामदार लगे हैं। उस सिंहासन में श्रीसीता रामजी बैठे हैं ॥ २४२ ॥

विचित्र नाना मणिरत्नव्रजाके सखी समूह प्रतिलब्ध माना ।

विधाय वेषं सखी पौरुषं तत्स्थूः प्राणामं कथयन्सुवेत्रा ॥ २४३ ॥

अर्थ :—हे सखी नाना प्रकार के मणि रत्नों के अनेक कुंजों के जाल के मध्य महा रत्नों का जाल उस दिव्य राजमण्डप में बैठे हुए श्री सीता राम जी के पास

में समस्त सखि। समाज से प्रतिष्ठा को प्राप्त की हुई सर्वेश्वरी श्री चारुशीला जी अपने श्री विग्रह में पुरुष वेष का शृंगार श्री युगल सरकार की रुचि पर धारण करके हाथ में मणिरत्न निर्मित सुन्दर बेंत को धारण कर प्रत्येक कुँज की सभी प्रतिष्ठिता सखियों के प्रणामों को उन सखियों के नामों सहित श्री युगल सरकार को कहकर स्वीकार कराती हैं ।। २४३ ।।

वचांसि तासां रघुराजपुत्रौ नृपात्मजा सा जगृहे कटाक्षैः।।
उत्थानकै श्चालि सुहस्तपद्मैः सुस्पर्श गीर्भिस्तु मनांसि जह्रुः ।। २४४ ।।

अर्थ—उन यूथेश्वरी सब सखियों के प्राणाभव प्रार्थनाओं को श्री सर्वेश्वरी जी के द्वारा जब श्री युगल सरकार सुनते हैं तब अपने सुन्दर नेत्र कटाक्षों से स्वीकार करके फिर श्री मिथिलेश राज कन्या जी के इशारा पर श्री चक्रवर्ती राजपुत्र अपने सुन्दर कर कमलों से स्पर्श करते हुए उठाये मीठी बोली से सबके मन छीन लिये ।। २४४ ।।

पञ्चरङ्गरस रञ्जितं शिरोवेष्टनं सुमणिमञ्जरीयुतम् ।
रत्न गुच्छमति भातु नासिका मौक्तिकं शशि विनिन्दकं सखि ।। २४५ ।।

अर्थ—हे सखि ! शिर में पचरंगा पाग मणि जड़ित सुर्रा संयुक्त तथा पाग के दोनों तरफ मणि मोतियों के गुच्छे और करोड़ों चन्द्रमाओं को लज्जित करनेवाले श्री मुखचन्द्र में नासिका के ऊपर नासामणि अमृत की वर्षा करती हुई अतिसुन्दर प्रकाश कर रही है ।। २४५ ।।

कर्णचारु मणिकुण्डले लसत्कण्ठ कञ्जमणि हेमभूषणम् ।
भातिहार सुमन स्रजो रसे पादलम्बिवन दाम कूजितम् ।। २४६ ।।

अर्थ—सुन्दर कानों में मणि कुण्डल कपालो में झलक रहे हैं। कण्ठ में पद्मराग-मणि व सुवर्ण के अनेक भूषण झलक रहे हैं। उर स्थल में मणिहार पुष्पमाल बहुत अच्छे लग रहे है। नूपुरों से गुञ्जित श्री चरणो तक आई हुई तुलसी कुन्द मन्दार पारिजात कमलो के फूलो से बनी वनमाला गले में शोभित हो रही है ।। २४६ ।।

ऊर्मिका सुकटि सूत्र नूपुरैः राघवो वलय वेष मङ्गलैः
पीत चारु परिधान कांगदं श्रोणिचित्र मृदुवेष्टनैःकिल ।। २४७ ।।

अर्थः—कमर की करधनी अपनी किंकिणियों से गुँज रही है। चरणों में वलय और नूपुर मंगल गीत गाते हुए सुशोभीत हैं। बाँह में बीजायठ तथा पीताम्बरी के ऊपर कमर में चित्रित पटुका से श्री राघव जी अति शोभा सम्पन्न हुए हैं ।। २४७ ।।

सीताविभातिमणिनूपुर वालयोर्मिग्रैवेयकां गुलि विचित्र समुद्रिकाभिः।
कांञ्चीसहंसक शिरोमणि हारतालपत्रैश्शुभाङ्गद सुकंङ्कण भूषणैश्च ।। २४८ ।।

अर्थ :—चरणों में मणियों के नूपुर हाथों में कंकण, कंठ में गजपोति आदि आभूषण, अँगुलियों में विचित्र रत्न-जड़ित सुन्दर मुद्रिकाएँ तथा कमर में हंस के समान शब्द करती हुई मणिमय करधनी, गले में हँसुली, चन्द्रहार, पदिकहार आदि, बाँह में बीजापठ, शिर में शीश फूल एवं केशर चन्दन आदि सब तमाल-पत्र कपोल पत्र आदि चिन्हों से श्री सीता जी अत्यन्त शोभायमान हो रही हैं ॥ २४८ ॥

नासा विचित्र मणि मण्डित भूषणैश्च
नानाति चित्रपट वामललाटिकाभिः ।
नाना सुपुष्प खचितामल भूषणैश्च
वाल्हिक मञ्जु वनमाल तमाल पत्रैः ॥ २४६ ॥

अर्थ :—विचित्र मणिमय भूषणों से भूषित नासिका, चित्र विचित्र रंगों की साड़ी और अति सुन्दर वन्दी, वेदा; विन्दु से ललाट अत्यन्त सुशोभित है। अनेक प्रकार के पुष्पों के भूषण और मणिमय भूषणों से तथा बाँह के आभूषणों से और निर्मल बनमाला और तमाल पत्रों से श्री प्रियाजू अति सुशोभित हो रही हैं ॥ २४९ ॥

ताम्बूल रञ्जित मुखोडुपति विशाल
रसलोलनेत्र कमलश्चटु लोक्तिदक्षः ।
नारी चकोर तरुणीः स्वरसं च
दत्वा रामो मनांसि विमुमोह सुनीलमेघः ॥ २५० ॥

अर्थ :—ताम्बूल रस रंजित सरदपूर्ण मुख चन्द्र रसीले चंचल विशाल नेत्र कमल तथा प्रौढा नायिकाओं के मुख चन्द्र चकोर नीलधन सदृश श्याम शरीर और चुट-कीली बातों को कहने में सुचतुर श्री रामजी ने अपना रस देकर सबके मन को सम्यक् प्रकार विमोहित कर लिया ॥ २५० ॥

भूत्वा विदूषक कुलानि च नित्यनट्यस्तस्थुः
स्वरूप रस सागर वीचि मग्नाः ।
कामं विसस्मरुरहो रचना विसर्गं धृष्टाः
प्रवीणधीषणाः सखि रम्य वेशाः ॥ २५१ ॥

अर्थ :—हे सखि श्री रामजी की नित्य नटिया विदुषक वंश में उत्पन्न होकर अपनी रचना द्वारा अनेक प्रकार के रमणीय इच्छानुकूल वेशों को ढीठ होकर बनाने में बुद्धि की अतिशय प्रवीणा भी हैं तौभी श्रीराम जी के सरस स्वरूप रस सागर की लहरों में बूड़ गयी, अपना कर्तव्य भूल गयी, अहो आश्चर्य है ॥ २५१ ॥

सर्वाविधाय हृदिराजवरात्मभूतौ
श्लिष्यन्ति चारू नयनाः सखिदम्पतीतौ ।
कामं मनोमृदु निकुंज सुतल्प पुंजान्नो तत्यजुः
सुमुखिताः प्रमदा रचित्वा ॥ २५२ ॥

अर्थ :—हे सखि उत्तम राजवंश प्रसूत दोनों दम्पति श्री युगल सरकार को सुन्दर नेत्रवती वे सब सखियाँ अपने हृदयों में बैठा कर फिर हे सखि सुमुखि, उन सखियों ने अति मनोहर निकुञ्जों में अनेक प्रकार के सुन्दर पर्यङ्कों की रचना की, उनके मनोरथों को पूर्ण करने के लिये श्री प्रिया प्रीतमजू भी उनके सुकोमल पर्यङ्कों को नहीं त्यागते हैं ॥ २५२ ॥

अब कुंज कुंज प्रति शयन किये हुए युगल सरकार को वेद की श्रुतियाँ बन्दी कन्याओं के रूप धारण कर स्तुति करके जगा रहे हैं।

श्री राज राज वर मोहन रामचन्द्र प्राणप्रियाशु

जय पातु मनः सुनेत्रैः।

त्वद्रूपसागर सुधा रस लौल मीन्यो बाँछन्तिते

मुखविधुं नृपराजपत्न्यः ॥ २५३ ॥

अर्थ :—हे श्री राज राजेश्वर सर्व श्रेष्ठ मोहक श्री रामचन्द्र जी श्री प्राण प्रियाजू के साथ आपकी शीघ्र जय हो, अपने मन और नेत्रों के द्वारा आप हम सब के मन की रक्षा करें। आपके रूप रूपी अमृत रस सागर में मछली की भाँति चंचल हुई श्री चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज को पत्नियाँ अर्थात् (आपकी मातायें) आपके श्री मुख को देखना चाहती हैं ॥ २५३ ॥

त्वसौध निष्कुट निकुंज तलेषु वृक्षा उत्फुल्ल नम्र शिरसः प्रियसन्तिकामम्

मत्तद्विरेफ निचयाभ्रमरी गणास्तुसप्रेम मंजुलरवं किल पायथन्ति ॥ २५४॥

अर्थ :—हे प्रिय आपके महल के बाहर के उपवन निकुञ्जों वनों में अनेक प्रकार के खिले हुए वृक्ष और लताएँ फूलों के भार से शिरों को झुकाये हुये हैं, उन फूलों पर भ्रमर और भ्रमरियों का समूह आपके प्रेम में मत होकर क्या ही सुन्दर शब्दामृत पीला रहे हैं ॥ २५४ ॥

गानं सुवाम शृणु भूषण मंजु रावं रम्यं

च वाद्य मधुर प्रमदा गणानाम्।

नाना विचित्र शकुनी भजचारू शब्दं

सबोधयन्ति मदनं भ्वयमानभारात् ॥ २५५ ॥

अर्थ :—हे प्रीतम! प्रमदा समाज के भूषणों की आवाज गान की सुन्दर रमणीयता और वाजों की मधुरता तथा विविध प्रकार के अनेक पक्षियों के विचित्र शब्दों को तो सुनिये! जो अपने मान गौरव के भार से स्वयं ही कामदेव को सम्बोधित कर रहे हैं अर्थात् बुला रहे हैं ॥ २५५ ॥

तिष्ठन्ति रामरघुनन्दन तेसखायो

द्वारिस्फूरन्नयनचारू मुखास्तुसाकम

शत्रुघ्न केकयसुतात्मज लक्ष्मणेन तेषांभवन्ति

वतकल्प समानिमेषाः ॥ २५६ ॥

अर्थ :—हे राम, हे रघुनन्दन ! आप के महल के बाहरी प्रकाशमान दरवाजों पर सुन्दर मुख और नेत्र वाले आप के सखा गण एकत्रित होकर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपके दर्शन के प्यासे हैं और श्री शत्रुघ्न जी, केकयी पुत्र श्री भरत जी और लक्ष्मण जी का तो एक निमेष एक कल्प के समान आपके वियोग में बीत रहा है ॥ २५६ ॥

तिष्ठन्ति दासनट नर्तक गायकादि वैश्या
विदुषक नटीगण लेपकास्ते।
पाथं विना रमण मीन गणा भवन्ति
कामं तथा सुमुख दर्शन लालसास्ते ॥ २५७ ॥

अर्थ :—आपके सेवक नट, नर्तक, गायक, वेश्या, विदूषक, नटिगण, तेल उबटन करने वाले आदि सभी सेवक वर्ग खड़े हैं। हे रमण, हे सुन्दर मुखवाले प्रीतम आपके मुखचन्द्र के दर्शन की लालसा से ये सब सेवकगण बिना जल के मीन की भाँति व्याकुल हो रहे हैं ॥ २५७ ॥

प्राणप्रिये वतकदेति वदन् कुमारं द्रक्ष्याम्
चारूनयनैः प्रिय लाड़नाय।
तिष्ठन्ति सिंह मृगपक्षी रथस्ववाजी नानागजादि
शिविका वहुशस्त्रपालाः ॥ २५८ ॥

अर्थ :—इसी प्रकार सिंह, मृग, पक्षी, रथ के घोड़े तथा अन्य घोड़े नाना प्रकार के हाथी व शिविकाओं में लगने वाले सेवक, विविध प्रकार के आयुध लिए हुए शस्त्रधारी सेवक सब कहते हैं कि अहो राजकुमार श्री रघुनाथ जी को सुन्दर नेत्रों से लाड़ प्यार करते हुए हे प्राण प्रिय, हम कब आप को देखेंगे ऐसा कहते हुए खड़े हैं ॥ २५८ ॥

संख्यातिगा सुमुख पौर जनाः सलीला
माधुर्य जीवन भृषा नृपराजपुत्र।
तिष्ठन्तिते मुखशशांक सुधार्थिनस्ते त्यक्त्वा
चकोर निचया इव दिव्य भोगान् ॥ २५९ ॥

अर्थ :—हे सुन्दर मुख चन्द्र वाले महाराज पुत्र ! आपकी सुन्दर लीला माधुर्य ही है जीवन जीनके ऐसे आपके असंख्य पुर निवासी जन आपके मुख चन्द्र की अभिलाषा से अपने घर के दिव्य असंख्य भोगों को त्याग कर चकोरों के तरह जहाँ के तहाँ खड़े हैं ॥ २५९ ॥

तिष्ठन्ति दिव्य भुवनेश गणाः सरामा.
स्नेहादि दिव्य भुवन प्रभवः प्रियाभिः
श्रुत्वातुते मधुर रूप विचित्र शोभां द्रष्टुं
नृपाधिप कुमार समागतास्त्वाम् ॥ २६० ॥

अर्थ :—हे श्री चक्रवर्ती कुमार जी आपके रूप की अति मधुरता विचित्र शोभा को सुन कर के प्रत्यक्ष देखने के लिरे अपनी प्रिया पत्नियों के सहित दिव्य चौदहों भुवनों के जितने भी स्वामी हैं वे अपने-अपने भुवनों के दिव्य भोगों को त्याग कर आपके दरवाजे पर आये हुये हैं ॥ २६० ॥

श्रीराम सुन्दर विदेह जितेन्द्रियादि
नाथेश्वर स्मरकर स्तव रूप राशिः
स्पृष्ट्वा शीला भवति रूप गुणाग्रनारी
वालालतापि कुशुमेषु शरार्द्रितात्म ॥ २६१ ॥

अर्थ :—हे सुन्दर, श्रीराम ! आप के रूप की अतिशयता तो विदेह राज सदृश जितेन्द्रिय परंहंसों को भी काम उत्पन्न करने वाले हैं और कहाँ तक कहें आपका स्पर्श पाकर पत्थर भी रूप गुणों में अग्रगण्या नारी हो गयी। इसी प्रकार लता वृक्षादि भी काम बाण से व्याकुल हो गये। जहाँ पर जड़ों की यह दशा है तो सचेतनों को क्या कहना है ॥ २६१ ॥

रामं विलोक्य मृग पक्षि शिला द्रुमाश्च
कामं भवन्ति खलु कामवशाः प्रमत्ताः
सीता मनोहर विशाल नवाङ्कुतार श्री मन्मुखेन्दु
शुचि धाम चकोर मारात् ॥ २६२ ॥

अर्थ :—इस प्रकार वेदों के स्तुति के पश्चात् ग्रन्थकार कहते हैं कि जिन श्रीराम जी को देख कर मृग, पक्षी, पत्थर, वृक्षादि भी काम के अधिन होकर प्रमत हो जाते हैं आनन्द तृप्त हो जाते हैं वे श्री रामजी विशाल नेत्रवती, अद्भुत नवीन प्रकाशवती पवित्रता की धाम श्री सीताजी के मनोहर श्री मान मुखचन्द्र को देख कर चकोरवत् होकर समीप ही में रहते हैं ॥ २६२ ॥

सीतां बिना जगदिदं भुवनं परं च शून्यं च
पश्यति सदा स च शोभनोऽस्ति ।
यद्दैवतो त्सवमहो जनकात्मजा सा नारीषु
चोत्तमतमा प्रियराग मग्ना ॥ २६३ ॥

अर्थ :—उन श्री प्रीतमजू को श्री किशोरी जी के बिना इस जगत को कौन कहे चौदहों भुवन तथा दिव्य परमधाम भी शून्य सदृश ही देखने में आता है। श्री किशोरी जी के साथ में ही ये प्रीतम जी की शोभा भी तो होती है। अहो ! क्यों न हो प्रीतम के अनुराग में सदा मग्न रहने वाली नारियों में सर्वोत्तमा प्रीतम के लिये महान उत्सव स्वरूपा श्रीजनकात्मजाजी ही तो हैं ॥ २६३ ॥

रूपामृताब्धि शशि जीवन मेघ राम त्वां
द्रष्टुकाम मनसो वयमातुरात्मः ।
तन्मीन चातक चकोर समास्त्वदासा स्ताम्बूल
रञ्जित मुखं पट भूषणाढ्यम् ॥ २६४ ॥

अर्थ :—फिर वेद श्रुतियाँ कहती हैं कि हे रूपामृत समुन्द्र के चन्द्रमा ! हे राम हे जीवन रूपी धान के मेघ। आपके दर्शन की इच्छा से हमारा मन व्याकुल हो गया है। पान के रस से रंजित आपका मुखारविन्द, दिव्य वस्त्र भूषणों से भूषित श्री विग्रह दर्शन की आशा से आपके दास वर्ग भी मछली, चातक तथा चकोर के समान एक टक होकर खड़े हैं ॥ २६४ ॥

रामं कदाकुटिल कुन्तल वृन्दरम्यं श्रीमन्मुखं

सरस वाच मति प्रवीणम्।

द्रक्ष्याम चारू नयना सखि चारू हासं सख्युर्निधाय

सुभुजं पथि यान्त मन्से ॥ २६५ ॥

अर्थ :—हे सखि। सखियों के गलेमें सुन्दर भुजाओं से गलबाँही दिये हुये, घुंघुराले बालों से आच्छादित अतिशय रमणीय सुन्दर मुखचन्द्र से परस्पर कटाक्ष करते हुये मधुर मुस्कान युक्त, अति ही रसीली वाणी बोलने में सुचतुर श्री रामजी को मार्ग में चलते हुये हम कब देखेंगे ॥ २६५ ॥

चित्राति मीन मृग खंजन कंज नेत्रं द्रक्ष्याम

लोल नयनै स्तुकदा रसज्ञैः।

शुभ्राननं विधु सहस्र भृशं प्ररूढं दर्पापहं

जनकजाधिपते प्रमत्तम् ॥ २६५ ॥

अर्थ :—करोड़ों चन्द्रमा एकत्रित होकर अपने सम्पूर्ण प्रकाश का अभिमान करें तो भी श्री जनकात्मजा जी के प्राणवल्लभजु का मुखचन्द्र उन के अभिमान को नाश करने वाला है और नेत्र कमल तो मीन, मृग, खञ्जन, कमल से भी अति चित्र-विचित्र रसमय चञ्चल प्रमत्त नेत्र कमलों को अपने रस मर्मज्ञ चंचल नेत्रों से हम कब देखेंगी ॥ २६६ ॥

इत्थं ब्रुवन्नृप कुमार सुतप्तनेत्रं मुंचन्ति

कामवशगाः प्रिय वारिधाराम्।

कन्दर्प दर्प दलनाथ विधायचित्तं चित्रा पिता इव

भवन्ति समाश्लिशास्त्यः॥ २६७ ॥

अर्थः—कामदेव के अभिमान को मर्दन करने वाले हे चक्रवर्ती कुमार, हे प्रिय, ऐसा कहती हुई, आपके चित्र को अपनी दृष्टि सामने रख कर दोनों बाहों से आलिंगन करती हुई अपने चित्त को आप में अर्पण करके आप के वियोग में सन्तप्त नेत्रों से अश्रुधारा बहाती हैं ॥ २६७ ॥

प्रीति प्रणाली रसराज सिन्धुः श्रुत्यागिरांसु श्रुतिवन्दि गीताम्।

प्रवर्ष जीमूत निभैः सुनेत्रै राचार वेदस्थिरराग मुख्यः ॥ २६८ ॥

अर्थ :—वेदों के द्वारा स्थिर आचरण से जिसके अनुराग को मुख्य कहा गया है

उन श्रृङ्गार रस समुद्र श्री रामजी ने वेदों के श्रुति रूपी बन्दियों से प्रेम की परंपरा से गाये हुये गीतों को सुन कर मेघों के सदृश सुन्दर नेत्रों से प्रेम की वर्षा की ॥ २६८ ॥

नानाद्भुतानन्त गुणाः सुसम्प्र कक्ष्या सुपुंवेषधराः प्रवीणाः ।
स्थिताः स्त्रियो वेत्रधरानवीना गन्धर्वराजाद्भुतचारुवीणाः ॥ २६९ ॥

अर्थ :—इस प्रकार श्री प्रीतम के प्रेम वर्षा करने पर चलने की तैयारी हुई तो महल के सातों आवरण फाटकों पर पुरुष वेष को धारण की हुई अनन्त अद्भुद गुणवती नाना प्रकार के कला-कुशला स्त्रियाँ हाथों में मणिमय छड़ी ली हुई पहरे पर खड़ी हैं कुछ नवीना बाला गन्धर्व राजों के सदृश अद्भुत श्रृङ्गार करके श्री युगल सरकार के गीत गा रहीं हैं ॥ २६९ ॥

आस्थाय रामः शिविका ववर्ष रसं चकर्षाशु जड़ान् ससीतः ।
पार्श्वेसहस्त्राः शिविकाः प्रयान्ति तथा स्त्रियों वेत्रधराः सहस्त्रशः ॥२७०॥

अर्थ :—इस प्रकार मार्ग में श्री प्रियाजी के साथ श्री प्रीतमजु जब शिविका में बैठ कर चलने लगे तो जड़ चेतन सबके चित्त को शीघ्र आकर्षण करते हुए अद्भुत रस की वर्षा कर दी । श्री युगल सरकार की शिविका के दोनों तरफ सर्वेश्वरी श्री चारुशीला जु के सहित समस्त युथेश्वरियों की शिविकायें भी चली और मार्ग में हजारों स्त्रियाँ सुन्दर श्रृङ्गार की हुईं और हाथों में मणिमय छड़ियाँ लेकर साथ में चल रही हैं ॥ २७० ॥

जगुश्च पुंवेषधरा स्त्रियस्तथा
परा नम्रगिरः सखीनाम् ।
प्रबोध यन्त्योऽपि पुरः सरस्ताः
प्रियाभिजग्मुः सखि लोल नेत्राः ॥ २७१ ॥

अर्थ :—बहुत सखियाँ पुरुष वेष धारण की हुई नम्र वाणी से गीत गाती हुई चल रही है । और बहुत सी चंचल नेत्र वाली सखियाँ आलस से भरे श्री युगल सरकार को प्रेम पूर्वक मधुर वाणी से जगाती हुई आगे-आगे चल रही हैं ॥ २७१ ॥

अनन्त कुंजेष्वथ मंगलानि भवन्ति सुप्रीतमना ब्रुवन्ति ।
विदेह राजार्चित लालिताख्ये नितम्बिनी प्राणधने जयेति ॥ २७२ ॥

अर्थ —अब इसके आगे हे सखि । अनन्त कुञ्जों में अत्यन्त अनुराग पूर्ण मन होकर मंगल गीतों को गाती हैं । क्या गाती हैं सो यह है कि हे श्री विदेह महाराज से पूजित ललित मुखवाली, समस्त नितम्बवती सखियों की प्राणधनेश्वरी, आपकी सदा ही जय हो ॥ २७२ ॥

श्री राज राजेश्वर राज पुत्र श्री कौशलाधीश सुधाब्धि चन्द्र ।
सीता मुखाम्भोरुह भृङ्गराज प्राण प्रिया नन्द गते किशोर ॥ २७३ ॥

अर्थ—हे श्री राज राजेश्वर, कौशलेश महाराज रूप अमृत समुद्र से उत्पन्न चन्द्र हे श्री सीताजी के मुख कमल के भ्रमरों के राजा, हे प्राणप्रीयाजु के आनन्द वर्धक किशोर राजपुत्र, आपकी जय हो ॥ २७३ ॥

श्री राम पंके रूह चित्र भानोः
सीते विदेहाद्भुत पुण्य राशे ।
इत्थं निकुंजेषु जय ध्वनिस्तु प्रोचारिता
कुञ्ज गणेषु रम्या ॥ २७४ ॥

अर्थ—सूर्यवंश रूपी कमल को खिलाने वाले विचित्र सूर्य । हे श्री राम । हे विदेह वंश की अद्भुत पुण्य राशि स्वरूपा श्री सीते । आपकी जय हो । इस प्रकार मार्ग के प्रत्येक कुञ्ज में यत्यन्त रमणीया सखियों द्वारा सानुराग उच्चारण किया गया है। २७४ ॥

गन्धर्व राजार्भक नाथ दर्प सुखण्डनं
श्री रस राज मूर्तिम् ।
श्री सर्व तोषाभिध रत्नजात सुमन्दिरे
लोकय राम चन्द्रम ॥ २७५ ॥

अर्थ—अब श्री ग्रन्थकार कहते है कि गन्धर्वों के राजा उनके सर्वश्रेष्ठ सुन्दर पुत्रों के सौन्दर्याभिमान को सुन्दरता पूर्वक खण्डन करने वाले शृंगार रस के साक्षात् श्रीविग्रह श्री रामचन्द्र जी के सर्वतोष भवन नामक विविध रत्नों से बने सुन्दर मन्दिर में दर्शन करो ॥ २७५ ॥

श्रीराम चन्द्रानन चन्द्रमेनं नेत्रे
समाधाय विलोकयाशु ।
प्रिये सहस्रामित चन्द मन्द करं
चकोरीकृत जन्तु जातम ॥ २७६ ॥

अर्थ—हे प्रिय सखि । जड़ चेतन जीव मात्र को चकोर बनाने वाले करोड़ों चन्द्रमाओं को फीका करने वाले श्री रामचन्द्र जी के मुखचन्द्र को हृदय में रखकर नेत्रों से शीघ्र अवलोकन करो ॥ २७६ ॥ "सर्वतोष भवन की झाँकी"

हेमं किरीटं मुकुटं सुरत्नं सन्
मण्डलं मानिनि चन्द्र खण्डम ।
सुरत्न पटं किरणैक धामं सुरत्न
गुच्छं रवि दर्प हन्तृ ॥ २७७ ॥

अर्थ :—हे मानिनि । प्रीतम के मस्तक में सुवर्ण के किरीट संयुत मणियों के मुकुट में रत्नों का जो किरण मण्डल बना है और किरीट के मध्य जो अर्ध चन्द्र बना है उसके नीचे के भाग में सुन्दर रत्नों का पट्टा और रमणीय रत्नों के गुच्छे

व जो प्रकाश के एक धाम हैं वह सूर्य के मद (अभीमान) को तिरोभूत कर रहे हैं ॥ २७७ ॥

सुकर्ण योमौक्तिक रत्न कुण्डले

नाशाग्रभागे सखिमौक्तिकं त्वम ।

पश्यालि कंठा भरणं सुरत्नं थष्टिं च

पाणौ हृदिरत्न हारम् ॥ २७८ ॥

अर्थ :—हे सखि सुन्दर कानों में मोती और रत्नों के कुण्डलों को तथा नासिका के अग्र भाग में नासामणि को तो देखो। हे अलि कंठ के कौस्तुभ आदि रत्नों के भूषण हाथ में रत्न जड़ित सुन्दर कड़ी हृदय में मणियों की हारों को तो देखो ॥ २७८ ॥

त्वं काक पक्ष्यं सुकपोल लम्बि पश्यालि हालाहल वारि सिक्तम ।
निरीक्ष्य यं मोह वशा भवन्ति नार्योऽनुरक्ता: भृश मानरूढ़ा: ॥ २७९ ॥

अर्थ :—हे आलि कौवे के पाँख के सदृश हालाहल तो रस से भिजाये अलकों को सुन्दर कपोलों पर बिखरे हुये देखो। अत्यन्त मान करने वाली अनुरागिनी नारी भी उस बिखरी हुई अलका वलि को देख कर अपने मान को भूल जाति है ॥ २७९ ॥

बिम्बाधरोद्न्त रूचि बिभाति किं काम खड्ग: सखि कोमलीयम ।
पीतांशुक: श्रोणितटोऽपि सिंह दर्पापहो मेखल पाँति रम्य: ॥ २८० ॥

अर्थ : —हे सखि बिम्बा फल सदृश लाल अधरों के बीच में दन्त पंक्ति ऐसे प्रकाशित हो रही है मानों कामदेव की सुकोमल तलवार चमक रही हो। सिंह के अभिमान को दूर करने वाली पतली कमर के नीचे नितम्बों में सुन्दर पीताम्बरी के ऊपर कमर के करधनी के किंकियों की पंक्ति कैसी मधुर आवाज कर रही है ॥ २८० ॥

सिंहासने रत्नमये सुमुक्ता सहस्र पत्राद्भुत चारू पद्मे ।
विभाति मध्ये सखि हेम कर्णिका विचित्र वस्त्रा स्तरणो पपन्ना ॥ २८१ ॥

सर्वतोभ भवन में युगल सरकार के सिंहासन का वर्णन किया जा रहा है।

अर्थ :—रत्नमय सिंहासन के मध्य मुक्ता मणियों से रचित हजार दल वाले अद्भुत सुन्दर कमल के मध्य करणीका में सुचित्र विचित्र जो बिछावन बिछाये गये हैं वे अत्यन्त सुन्दर हैं ॥ २८१ ॥

पीतोपधानानि मृदूनि चाष्टौ नीलोपधानानि वसूनितत्र ।
रामाभितो रूप गुणाभिरामा स्तस्याष्ट सख्यो वसवस्फुरन्ति ॥ २८२ ॥

अर्थ :—उस सिंहासन के मध्य श्री युगल सरकार के दायीं तरफ और वायीं तरफ क्रमश: आठ-आठ करके सरकार की आठ सखी जैसे श्री चारु शीला जी, श्री

लक्ष्मण जी, श्री पद्म गन्धा जी, श्री वरारोहा जी, श्री शुभगजी, श्री सुलोचना जी श्री हेमा जी, श्री क्षेमाजी हैं और उसी प्रकार श्री किशोरी जी के तरफ श्री प्रसाद जी, श्री सुशीला जी, श्री विमला जी, श्री श्रीजी, अतिशीला जी, श्री विश्वमोहिनी जी, श्री हरि प्रियाजी, श्री वाजीशा जी, ये आठ हैं, ये सब १६ प्रधान सखियाँ हैं। इन सखियों के बैठने की गद्दियाँ श्री प्रीतमजु के पक्ष की सखियों के लिये पीली मखमली गदियाँ और पीले मखमली जरीदार मसनद आठ हैं। और श्री प्रियाजु की पक्ष वाली सखियों के बैठने के लिये नीले मखमल की जरीदार गद्दियाँ और नीले मखमल के तकिये मसनद आठ लगे हुये हैं। इन गदियों में बैठने वाली युगल सरकार की मुख्य सखियाँ अपने रूप गुण सौन्दर्य के गौरव में युगल सरकार की समानता करती हैं ॥ २८२ ॥

चतुर्षु दिक्षु स्फुटतीव्र राग लसन् मुखाम्भोज सखी सुमण्डलम् ।
यस्याभितो भान्ति तड़ितघनाः किंप्रिये विचित्र श्चपला मनोज्ञाः ॥ २८३॥

अर्थ :—हे प्रिय सखि ! युगल सरकार के चारों तरफ तो अत्यन्त अनुराग से खिली हुई मुखार विन्द वाली सखियों का समूह प्रकाशित हो ही रहा है। फिर भी यह युगल सरकार की दोनों पक्ष की प्रधान सखियाँ तो अत्यन्त विचित्र मन रमणियाँ चंचलता से क्या हों मेघ में बिजली सदृश चमक रही हैं प्रीतम के साथ ऐसे ही प्रतीत हो रही हैं ॥ २८३ ॥

विभाति सीता सखि सुन्दरांगी विशाल नेत्रा रस रूप राशिः ।
श्रीराम नेत्रोत्सव जीवना च मनोहरा राम रति प्रदात्री ॥ २८४ ॥

अर्थ :—हे सखि ! सुन्दर श्री विग्रह वाली विशाल नेत्र वाली रूप रस की समुद्र भूता श्री सीता जी तो श्री राम जी के नेत्रों के उत्सव स्वरूपा प्राण जीवनी मन को अपहरण करने वाली श्री प्राणवल्लभजु को सम्यक प्रकार से प्रसन्न करने वाली प्रीतम के बायें भाग में अत्यन्त ही सुशोभित हो रही हैं ॥ २८४ ॥

सीतां विनाये सखि कोटि कल्प समास्तु रामं जनकात्मजासुम् ।
ध्यायान्ति निन्ध्याश्रम भागिनस्ते राम प्रसादा द्विमुखा भवन्ति ॥२८५॥

अर्थ :—हे सखि ! सीता जी के बिना उनके प्राणभूत श्री रामजी को करोड़ों कल्प तक भी ध्यान करता रहे वह अभागा केवल परिश्रम को ही प्राप्त करेगा और श्री रामजी के प्रसाद से बिरहित हो जायेगा, क्योंकि श्री सीता जी के बिना श्री रामजी किसी को भी नहीं अपनाते हैं ॥ २८५ ॥

रामास्तु वश्यो भवतिहि सीति चोचारणादेव जपन्ति सीताम् ।
भूत्वानुगामि भजते प्रियस्तान् ब्रह्मेश शक्रार्चित राजपुत्रः ॥ २८६ ॥

अर्थ :—जो कोई ठंढी के कारण सी-सी कहता है तो श्री रामजी समझ लेते हैं कि अब यह श्री सीता कहेगा, इसलिये सी कहते ही वश में हो जाते हैं। जो भी

प्राणी श्री सीता नाम को पूर्णता रूप से जप करता है तो ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्रादिक समस्त देवताओं से पूजि-चरण राजपुत्र श्री प्रीतमजु उसके अनुगामी होकर उसी का भजन करते हैं ।। २८६ ।।

स्फुरन्तिलोला प्रियमानसे नो पाशास्तु सीता मुखचन्द्र बिम्बे ।
वामालकाः श्रीनृपराजपुत्र निमेष चौराः सखि पश्य कामम् ।। २८७ ।।

अर्थ :—हे सखि ! श्री सीता जी के मुखचन्द्र बिम्ब में दोनों तरफ चंचल हुए चमकीले अत्यन्त सुन्दर यह अलकावली प्रीतम के मन को और हम सब के चित्त को फँसाने के लिये मानो जाल बिछाया हुआ है। हे सखि ! देखो चक्रवर्ती कुमार श्री प्रीतमजू को तो मनमाना पलकों को इन बालों ने चुरा लिया है अर्थात् प्रीतमजु श्री प्रियाजु की अलका वली को एक ठक से अवलोकन कर रहे हैं ।। २८७ ।।

किं मन्मथेभस्य करौ विशालौ धारेति शृङ्गार रसस्य मन्ये ।
आभिः कुमारो रचिता वयस्ये रामोन्यथा श्यामतनु कथम् स्यात ।।२८८।।

अर्थ :—हे समान अवस्था वाली सखि । श्री किशोरी जी के मुखचन्द्र के दोनों तरफ घुंघराले अलकों के समूह जो झुल रहे हैं क्या ये कामदेव के हाथी की सूंड तो नहीं है । अथवा मैं तो ऐसा मानती हूँ कि आकाश से शृंगार रस की धारा बह रही है यही दोनों शृंगार रस की धाराओं से रामजी को कुमारा वस्था में श्री विग्रह रचा गया है, तभी तो प्रीतम श्याम हो गये हैं अन्यथा कैसे श्याम होते ।। २८८ ।।

सीता तनौ भाति च नील वर्णा शाटीति शंके सखि काम जाल।
नैवा न्यथा राम मनः सुमीनो बद्धो भवेन्तारि रस प्रवीणः ।। २८९ ।।

अर्थ :—हे सखि । श्री सीताजी के गौर वर्ण में नीले रंग की साड़ी अत्यन्त सुन्दर लग रही है मानो काम ने जाल बिछाया है, नहीं तो नारी रस प्रवीण श्री राम जी के सुन्दर मन रूपी मीन को कैसे बाँधा जाता ? ।। २८९ ।।

सीताललाटे सखि नील बिन्दुर्विभाति दृगदोष हरः किमुज्वलः ।
शंके शशांको परिजात कान्त मनोमृगो वा सखि काम मन्त्रः ।। २९० ।।

अर्थ :—हे सखि । श्री सीता जी के ललाट में नील विन्दु ऐसा लगता है मानों शृंगार रस दृष्टि दोष निवारणार्थ बैठा हो अथवा चन्द्रमा के ऊपर प्रीतम का मन रूपी मृग बैठा हुआ हो ? अथवा हे सखि, कामदेव ने कोई मन्त्र तो नहीं किया है ।। २९० ।।

नेत्रेतु जीमूत निभे विशाले यदोदयं यत्र च सञ्जने हि ।
यातस्तदा प्लावयतो लकान्तं धाराभि रास्नेह रसस्य चालि ।। २९१ ।।

अर्थ :—हे आलि । श्री प्रियाजू के अंजन संयुक्त मेघ के सदृश विशाल नेत्र जब

जिसके ऊपर कृपा की वर्षा कर देती हैं तब उस समय स्नेह रस की धारा से नख से शिखा तक उसको बुड़ा देती हैं। अर्थात् अपनी कृपा दृष्टि से भींगो देती हैं ॥ २९१ ॥

सवीटिका चर्वण वीक्षणास्य विशालनेत्रस्मितहास्यशोभा ।
नविस्मरन्ति प्रमदेशरीर मनोगृहाद्या स्तुसुविस्मरन्ति ॥ २६२ ॥

अर्थ :—हे प्रमदे। देखने वाले को इन श्री प्रीतमजू के विशाल नेत्र मन्दमुस्कान की शोभा पान बीड़ा को चर्वण करना और कटाक्षयुक्त अवलोकन कभी नहीं भूलता है। अपना शरीर और मन तथा धन सब भूल जाता है ॥ २९२ ॥

श्री रामचन्द्रानन दर्शनातु सर्वे गृहाद्या किल विस्मरन्ति।
धावन प्रियाङ्के सखि यति चित्तं त्यागं क्षणं नो हृदयं करोति ॥ २६३ ॥

अर्थ :—श्री रामचन्द्र जू के दर्शन से तो तन, मन, धन, भवन, सुहृदादि भले भूल जायँ, परन्तु चित्त दौड़ कर प्रीतम के गोद में बैठ जाता है, फिर एक क्षण मात्र भी उस गोद को त्याग नहीं करता है ॥ २९३ ॥

प्राप्तो नयोः श्री नृपराज पुत्रः सुनेत्रयोः श्यामतनुस्तु तद्दिनात् ।
इमे तु नेत्रे सरसेति लोले नप्रान्पुतौन्यं प्रियरागरक्ते ॥ २६४ ॥

अर्थ :—हमारे इन दोनों सुन्दर नेत्रों को जब से श्री चक्रवर्ती कुमार श्रीराम जी प्राप्त हुये तब से ही हमारा शरीर भी उनके सदृश ही श्याम हो गया। अत्यन्त रसीले चंचल हमारे इन नेत्रों में प्रीतम का अनुराग भर गया अब अन्यत्र कहीं नहीं जाता है और कुछ नहीं चाहता है ॥ २९० ॥

ज्ञानं विना राजकिशोर मेनमालोकयन्त्यौ नयने विशाले।
माधुर्यवाले चित्तमीनरूप जालेन बद्धं सखि किं करोमि ॥ २६५ ॥

अथ :—प्रीतम के सौन्दर्य माधुर्य रसास्वादन विभक्ते हे सखि मेरे विशाल नेत्रों में यह राजकुमार प्रवेश कर गये, दर्शन करते हो। अब मेरा मन इनके रूप रूपी जाल में फँस गया मैं ज्ञान विहीन हो गयी, अब मैं क्या करूँ ॥ २९५ ॥

प्रिये विशाले सरसेति कज्जले मत्ते सुनारी रस काम तस्ते ।
शुभेऽलसे रामकुमार नेत्रे विलेखनं में हृदये विधत्तः ॥ २६६ ॥

अर्थ :—श्रीराम जी के विशाल, रसीले, काजल युक्त, सुन्दर नायिकाओं की कामना से रसयुक्त, आलस्यपूर्ण, सुन्दर, अत्यन्त प्रिय, विशाल नेत्र मेरे हृदय में विधाता ने लिख दिये, अब निकल नहीं सकते।

कवित्त— चितवनि साँग चलाइ यार तुम तन मन छेद किया है।
ढाँका लगे न सीमे माफिक ऐसा दर्द दिया है ॥
अगर हकीम मसिहा आवै तौ भी सीति हिया है।
युगलानन्य शरण हरदम मुस्कान विलोकि जिया है ॥

नृपात्मजो सौ चपलोऽति लम्पटः प्रविश्य मेंऽक्षणोः सखिसुन्दरांगः ।
पठन्विकोर्य्या लकमाननेषा निचिक्षिपे चेटक मञ्ज हास यन् ॥ २६७ ॥

अर्थ :—हे सखि ! अत्यन्त सुन्दर श्री विग्रह वाले बड़े लम्पट अति चंचल नेत्र व अपने मुखारविन्द में अलका बलियों को बिखरा कर के जादू पढ़ते हुए मन्द मुस्का कर हंसते हंसाते हुए यह श्री चक्रवर्ती राजकुमार मेरे नेत्रों में प्रवेश कर गये। हे अंगभूता सखि ! अब मैं क्या करूँ ? ॥ २९७ ॥

दिवानिशं श्री जनकात्मजेशः सर्वाङ्ग मध्य प्रविवेश कामम् ।
गन्तुं न शक्नोति पतन्ति पादौ तनुर्मनो में विवशः प्रवीणे ॥ २६८ ॥

अर्थ :—हे बुद्धिमति सखि। श्री जनकात्मजाजी के प्रति मेरे सर्वांग में मनमाना प्रवेश कर गये हैं, मेरा मन अब परवश हो गया शरीर भी शिथिल हो गया, पैर लड़खड़ाते हैं अब मैं चल नहीं सकती ॥ २९८ ॥

मुमोह चित्तं सखि साचि रामो विलोक्य वाम वनिता सुलम्पटः ।
निरीक्षणं तद्धृदये प्रवेशं करोति मूर्तिः शवपते ऽनिशंमे ॥ २६६ ॥

अर्थ :—हे सखि। नायिका तथा वनिताओं में आशक्त लम्पट श्री रामजी जब टेढ़ी कटाक्ष से बनिताओं को देखते हैं तब उनका चित्त विमोहित हो जाता है। उन के वे कटाक्ष मेरे हृदय में प्रवेश कर गये हैं, अब उन प्रिय की मूर्ति मेरे हृदय में अहर्निशि शयन कर रही है ॥ २९९ ॥

सुकाक पक्षान्त मुखाब्ज माधुरी सबीटिका चर्वण हास वीक्षणम् ।
शंके प्रिये मोहन यन्त्र मेनं दिवानिशं कर्षति मेऽति चित्तम् ॥ ३०० ॥

अर्थ :—हे प्रिये। कौवे के पंख सदृश सुन्दर जुल्फें, सुन्दर मुखकमल को माधुरी पान के बीड़ा चबाते हुए, मन्द मुस्कान युक्त कान पर्यन्त विशाल नेत्रों का कटाक्ष मानो यह ही मोहिनी यन्त्र है, जो रात दिन मेरे चित को बलात् आकर्षण करता है ॥ ३०० ॥

उवास तद्वीक्षण मालि माया पत्यो मिथश्चारू सखी मनस्सु ।
क्षणं न तत्याज विवेश माधुरी बिम्बा धरस्याऽपि रसाकरस्य ॥ ३०१ ॥

अर्थ :—हे आलि ! दोनों सरकार का परस्पर अवलोकन सखियों के मन में बैठ गया है। रस की खानि बिम्बा सदृश लाल अधरों की माधुरी भी एक क्षण के लिए हृदय को नहीं त्यागती है ॥ ३०१ ॥

प्रसूः पिता चात्म जनः सुलाड़का राम प्रियाया भुवितेऽतिधन्याः ।
स्पृशन्ति येऽङ्गानिमृदूनि चुम्ब्य श्रीमन्मुखाब्जं स्मरचारुहासम् ॥३०२॥

अर्थ :—वेहीं लोग इस भूमण्डल में धन्य हैं जो इन श्री प्रीतम जू की काम बर्धक मुस्कान युक्त अत्यन्त शोभा सम्पन्न कोमल मुख कमल का स्पर्श करते हैं और चुम्बन करते हैं, चाहे वे पुत्र, पिता, सुहृद, प्रिया आदि जो भी हों ॥ ३०२ ॥

कान्तोऽतिधन्यो विरचय्य शैय्यां धत्ते किशोरीं मृदुलां शुभांके ।
मुखेन्दु बिम्बं सखि पश्य पश्य सुवर्धते मोद पयोधिरङ्गाः ॥ ३०३ ॥

अर्थ :—हे सखि देखो-देखो प्रीतम भी धन्यतम हैं जो सुन्दर शैया की रचना करके अपने सुन्दर अंक में अत्यन्त सुकोमल श्री किशोरी जू को लेकर मुखचन्द्र का पान करते हुए सुधारस सिन्धु की तरंगे लेते हुए अत्यन्त बढ़ रहे हैं ॥ ३०३ ॥

प्रीत्या समालिंग्य यदा करोति रति श्रमं श्री रस रंग मूर्तौ ॥
पश्यन्ति स्वांगानि तदा मृदूनि रसानि धन्या व्यजनं विधाय ॥ ३०४ ॥

अर्थ :—रस और रंग की श्री मूर्ति श्री युगल सरकार जिस समय परस्परस्नेह आशक्त हो कर आलिंगन करके रति श्रम करते हैं उस समय भाग्यशाली जन ही अपनी अनुराग दृष्टि से दोनों सरकार के कोमल श्री विग्रह के दर्शन करते हुये व्यजन करते हैं, वे धन्य हैं ॥ ३०४ ॥

इत्थं वदन्त्यो रस राज राजं चिते समानीय मुखारविन्दम् ।
विलोकयन्त्यो मुमुहुः सुनार्य्यो न संस्मरुः स्नेह वशा गृहाणि ॥ ३०५ ॥

अर्थ :—इस प्रकार कहती हुई वे सुन्दर अंगवती बालायें श्रृङ्गार रस के श्री विग्रह दोनों सरकार के हृदय में लाकर मुखार विन्द को अवलोकन करती हुई प्रेमाधीन हो गयी, अपने घर परिवार भूल गयी ॥ ३०५ ॥

सुभ्रातरोऽसंख्यगणै स्त्रयंस्ते प्राप्ताः किशोरैः सखिभिश्च मित्राः ।
प्रियाः सखायः सुहृदस्सनर्म सखाय आयान्ति रसाब्धिरूपाः ॥ ३०६ ॥

अर्थ :—इतना अन्य नारियों के कहते हुए अब कवि कहते हैं कि असंख्य जनों के साथ और किशोरावस्था सम्पन्न असंख्य सखा मित्रों के साथ श्री लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न तीनों भाई भी और प्रिय मित्र नर्म सुहृद रस समुन्द्र सदृश सखागण भी सब के सब सर्वतोष भवन में पहुँच गए ॥ ३०६ ॥

विदूषकाश्चेट गणाः विटाश्च रसा कराश्चारू च पोठ मर्दाः ।
तयोर्मुखेन्दुं शुचि पीषकास्ते जीवन्ति कामं प्रविलोक्य नित्यम् ॥३०७॥

अर्थ :—रस समुद्राभूत जितने भी विदूषक, चेटक, विट और पीठ मर्दक भेद से सखाओं का समूह हैं, वे सब श्री युगल सरकार के मुख चन्द्र को नित्य इच्छापूर्ण रूप से दर्शन करके तृप्त होते हैं। श्री युगल सरकार की लीला विलासों को पुष्ट करते हैं ॥ ३०७ ॥

राम प्रिया रामहृदि प्रविष्टा रामैक रूपा रमणे प्रवीणाः ।
अनेक मांगल्यक द्रव्य हस्ताः सुस्नेह प्रोफुल्ल हृदाः समन्तात् ॥ ३०८ ॥

अर्थ :—और जो श्री रामजी के प्रिया श्री राम रूप ही है रमण में अत्यन्त प्रवीण श्री रामजी के हृदय में पैठी हैं उनका हृदय युगल सरकार के स्नेह में कमलवत् प्रफुल्लित हैं ऐसे सखा सब वे युगल सरकार के चारों तरफ अनेक प्रकार

के मांगलिक द्रव्यों को हाथों में लेकर विराज रहे हैं ॥ ३०८ ॥

स्पृष्टवा धरित्रीं विनिमय्य हस्तैशिरांसिचाहुर्जय शब्द मुच्चैः ।
तयोर्मुखेन्दु सुविलोक यन्ति मुहुः चकोरी नयना इवेन्दुम् ॥ ३०६ ॥

अर्थ :—वे सखा सब हाथों को पृथ्वी में स्पर्श कर पुनः मस्तक में लगाकर ऊँचे स्वर से युगल सरकार की जय कहते हुये युगल सरकार के मुख चन्द्र को चकोरी वत होकर देखने लगे ॥ ३०९ ॥

तद्धस्त ताम्बूल मुखाः सुचित्रोष्णिषा उरोहार सुकर्णभूषाः ।
सुश्रोणि कांचि कर कंकणास्ते मनोहरा भान्ति सुचित्त चौराः ॥ ३१० ॥

अर्थ :—वे सखा गण पंचरगे पागों को धारण किये हुये गले में अनेक प्रकार के मणिमय हार आदि भूषणों को धारण किये हुये और कमर में मणिमय करधनी, हाथों में कंकण, अंगुठी आदि भूषण और वस्त्रों से अत्यन्त सुन्दर सब के चित्तचोर रूप वाले वे युगल सरकार के हाथ से पान का बीड़ा प्राप्त कर पा रहे हैं ॥३१०॥

वेश्या नटी भाँड विदूषकाश्च कलाप्रवीणा नट नर्तकाश्च ।
सुनाट्यकारा बहुरूपिणश्च सुसूत्रधारा मृदुपान मत्ताः ॥ ३११ ॥

अर्थ :—वेश्या, नटी, भाँड़, विदूषक अनेकों कला के प्रवीण लोग नट, नर्तक, नाटक करने वाले, बहुरूपिया और कठपुतली नचाने वाले आदि भी श्री युगल सरकार का मधुर माधुर्य सुधा रस पान से विमत्त हैं ॥ ३११ ॥

वन्दीजना मागध सूत वृन्दाः काव्यप्रवीणा रसिकाग्रणीश्च ।
गन्धर्वराज प्रतिमाः किशोराः सुगायका गान विधान कोविदा ॥३१२॥

अर्थ :—वन्दी मागध, सूत आदिकों की भीड़ और काव्य कला प्रवीण नवों रसों को प्रदर्शन करने में सुचतुर तथा गन्धर्व राज के सदृश किशोरावस्था सम्पन्न सुन्दर गानेवाले गान विधान के मर्मज्ञ ये हैं ॥ ३१२ ॥

सर्वे सभांतां विविशुः स्वविद्या श्चक्रुः शुभा सर्व कला स्सुभिज्ञाः ।
ददर्श तास्ता रसिकाग्रगामी श्री चक्रवर्ती मृदुलः कुमारः ॥ ३१३ ॥

अर्थ :—सब लोग सब कलाओं के पूर्ण मर्मज्ञ अति सुन्दर अपनी अपनी विधाओं को प्रकाश करते हुए युगल सरकार की उस सभा में प्रविश हुए । रसिक शिरोमणि अत्यन्त सुकोमल श्री चक्रवर्ती राजकुमार ने उन सब के कौतुकों को देखा ॥३१३॥

नटी ननर्तालि चकर्ष सर्व चितं प्रवीणः सदसि स्फुरन्ति ।
रस ववर्षाथ मनोज हर्ष रामो ददौ वित्त मपार तोषम् ॥ ३१४ ॥

अर्थ :—हे आलि । उस समाज में अत्यन्त चमकीली एक नटी ने ऐसा नृत्य किया कि सब के चित्त को खींच लिया । काम बर्धक हर्ष करते हुए अत्यन्त प्रकाशवती उस नटी को बड़े चतुर सयाने श्री रामजी ने सभा में ही अपार धन देकर सन्तुष्ट किया ॥ ३१४ ॥

कुब्जास्त्रिभंगी सखि वामनोऽष्टावक्रः सभायां विविशुश्च सर्वे ।
प्रियः किशोरी भृश निम्न गामिनो ददर्श कामं चकितं मुहुस्तान् ।।३१५।।

अर्थ :—कुब्जा तीनों अंगों के टेढे, बामन, आठ अंग से टेढे आदि सबने उस सभा में प्रवेश किया । और अति ही नीचे होकर चलने वाले ऐसे अनेक प्रकार के विचित्र दृश्य उस सभा में प्रविश हुए । हे सखि । अत्यन्त प्रिय श्री युगल सरकार ने बारम्बार विचकित होकर उन सब को पूर्ण रूपेण देखा ।। ३१५ ।।

भवामि नम्रः प्रियराम सौध द्वारस्थ ते पात भयात् प्रवीणः ।
इत्थं तमूचे सखि वामनोथ सुरूप भारेण मनो हरेषु ।। ३१६ ।।

अर्थ :—हे प्रिय हे राम आपके महल के दरवाजा से ठोकर लग कर कहीं मैं गिर न पड़ूँ अतः अति बुद्धि कुशल में नम्र हो गया हूँ । इस प्रकार वामन (बौना) ने श्री रामजी से कहा तो हे सखि । दूसरा एक और भी बोला कि मनोहरों के उपर कहीं रूप सौन्दर्य का बोझा न पड़ जाय अतः मैंने सौन्दर्य के भार को पीठ में रख लिया तो मैं दबकर छोटा हो गया हूं ।। ३१६ ।।

अंगेषु बक्रोऽस्मि बसुष्वतो मां वदन्ति लोका प्रियचाष्टवक्रम् ।
त्रैलोक्य सौन्दर्य गुणोपधानं दधामि नित्यं हि वदन्ति कुब्जम् ।। ३१७।।

अर्थ :—हे प्रिय । मैं समस्त ऐश्वर्य को अपने आठों अंगों में टेढ़ा कर के रखता हूं इसीलिए मुझे लोग अष्टाबक्र कहते हैं । पुनः एक कुबड़ा बोला कि हे प्रिय । मैं तीनों लोकों के सौन्दर्य को अपना तकिया बना कर रखता हूँ, अतः मुझे लोग कुब्ज कहते हैं ।। ३१७ ।।

यदाप्सरोऽनंग सभा प्रविष्टा स्तद्दृष्टि दोषान् मदन त्रिभंगी ।
नाम्नातिभारः प्रिय सुन्दरीणां वहामि पीठानि सुनम्रकायः ।। ३१८ ।।

अर्थ—कामदेव की सभा में जिस सयय अपसराएँ प्रविष्ठ हुई उस समय उन अप्सराओं की दृष्टि दोष से कामदेव तीन अंग से टेढ़ा हो गया था, अतः उसका नाम सुन्दरी स्त्रियों के लिये अतिभार पर गया था तब से मैं उन स्त्रियों के लिये सिंहासनों को अपने पीठ में ढ़ोता हूँ इसीलिए मेरा शरीर अति नम्र हो गया और मुझे नम्र भी कहने लगे ।। ३१८ ।।

नृपात्मजा हास्यरस प्रवीणा नृपात्मजाश्चारु सभा सदस्ते ।
सर्वे सखायो जहसुः प्रकामं छविस्तुसा में हृदि सन्निविष्टा ।। ३१९ ।।

अर्थ—उन सब की इस प्रकार विनोद युक्त बातों को सुनकर श्रीराम जी सहित तीनों भाई तथा अन्य राजकुमार और सभी सखा गण समस्त सभा वृन्द अत्यन्त ही ठठठहा के हँसे । इस प्रकार उस सभा की जो शोभा है वह मेरे हृदय में प्रवेश कर गयी है ।। ३१९ ।।

॥ सर्वतोष भवन से माता पिताजी के भवन में जाना ॥

तदागता मातृपितुः सुदूतिका श्रुत्वा गिरं तत्र जगाम रामः ।
निधाय चित्ते क्षितिजासु माधुरीं तासां सबन्धुः ससखोऽतिदक्षः ॥३२०॥

अर्थ—सरकार जब सर्वतोष भवन में बैठे थे अपने नीजि जनों के समाज में विनोद कर रहे थे उसी समय, माता और पिता जी की प्रेषिता दूति का सुन्दर सभ्यता पूर्ण युगल सरकार के समीप में आकर माता पिता के कथन को सुनलिया तो अपने बन्धु और सखाओं के मध्य अत्यन्त सुचतुर श्री रामजी ने सुना तो भूमिजा श्री प्रिया के अत्यन्त सुन्दरता पूर्ण माधुरी को अपने चित में रख कर माता पिता के समीप चले गये तो (श्री किशोरी जी का प्रीतम के प्रति कथन) ॥ ३२० ॥

तिष्ठे कथं त्वच्छवितत्पराहं श्रीप्राण नाथ प्रियचित्त चौर ।
वर्ते कथं त्वच्छवि जीव मीनो पश्येमुखेन्दोः शुभते चकोरी ॥ ३२१ ॥

अर्थ—हे प्राणनाथ, हे चितचोर, हे प्रिय, केवल आपकी शोभा को ही देखने में ही लगी हुई मैं आप के छवि रूपी अमृत समुद्र की मछली सदृश मैं हूँ आपके सुन्दर मुख चन्द्र में चकोर वत् रहने वाली मैं आपके वियोग में कैसे रहूँगी ।३२१।

नान्यत्र गच्छ प्रिय कण्ठ देशे प्राप्स्यामि मोदं विनिधाय दत्वा ।
सुवीटिकां बिम्ब फलाधरच्छवि पश्यन्न याता हृदि कामदाम् ॥ ३२२॥

अर्थ—हे प्रीतम आप मेरे कण्ठ से लगे रहें, अन्यत्र न जायँ । मैं आपको गले से लगा कर आनन्द देकर प्राप्त भी करूँगी। आप के बिम्बाफल सदृश अधरों में पान बीड़ा दूँगी और आप की मुख छवि को अवलोकन कर के मेरा हृदय कभी भी तृप्त नहीं होता है ॥ ३२२ ॥

श्रीराम ते रूप विमुग्ध बुद्धे र्माभूः सखे दृष्टिपथाच्च दूरम् ।
क्षणे-क्षणे राजकुमार कान्त छविं प्रपश्यामि नवां नवां ते ॥ ३२३ ॥

अर्थ—हे श्री रमण । आपके रूप सौन्दर्य से मोहित होकर मैं मुग्ध बुद्धि वाली हूँ । हे सखे मेरी दृष्टि से आप दूर न होवें । हे राजकुमार मैं क्षण क्षण में नवीन-२ आपकी छवि को देखूँगी ॥ ३२३ ॥

कृत्वातमंके सखि बालकास्तान् प्रसाध्य पीत्वा मुमुदेत दोष्ठयोः ।
मधुस्फुटं गाण्ड दृशोर्निरीक्ष्य प्राणा छविर्मे विरुणाद्धि तेषाम् ॥ ३२४ ॥

अर्थ—इस प्रकार कहती हुई श्री किशोरी प्रीतम को अपनी गोद में बैठाकर और अलकों को सुधार कर दोनों अधर की सुधा रस पान कर आनन्दित हुई और मीठे कपोलों के तथा मीठी दृष्टि के मधुर रस बर्धक चिन्हों को देख कर मैं आनन्दित होती हूँ कहीं हे सखि इस प्रकार कहते हुये दोनों सरकार की छवि को देख कर मेरे भी प्राण रुकते हैं ॥ ३२४ ॥

श्रुत्वा प्रियां प्रियवरः समुवाच भद्रे
संश्लेषणेन जनितं परमं सुखंयत्।
तस्मान्न मे प्रियतरं किमपीह लोके
सत्यं ब्रवीमि हृदयं हृदयेन विद्धि ॥ ३२५ ॥

अर्थ—हे सखी तब श्री प्रीतम जु कहते हैं कि हे भद्रे। आपके आलिंगन जनित इस महान सुख के आगे और मेरे लिये इस लोक में कुछ भी प्रियतम नहीं है। मैं सत्य कहता हूँ मेरे हृदय को आप अपना ही हृदय से जानिए॥ ३२५ ॥

एक निमेष मपिते रहितं वरेण्ये कल्पायते
घन पयोधर भार नम्रे।
नाहं व्रजामि शुभगे भवती सकाशात्
तातस्य शासनमिदं नयति प्रवीणे॥ ३२६ ॥

अर्थ—हे सुन्दर चन्द्रानने। हे पुष्ट पयोधरे सौंदर्य भार नम्रे ? मुझे आपसे रहित एक पलक भी एक कल्प के समान बीतता है। हे सौभाग्य शालिनि। मैं आपके समीप से अन्यत्र कहीं नहीं जा रहा हूँ। हे चतुरी मुझे केवल यह पिताजी का शासन ही लेजा रहा है॥ ३२६ ॥

तस्मात्सहस्वविरहं निमिषान्तरीयं शीघ्रं
समेत्य करवाणि वरोरुक्रीड़ाम्।
तावद्विलोकय प्रिये सहयोग चित्रं दत्वा
प्रतोष्य शुभगां रघुनन्द नोऽथ॥ ३२७ ॥

अर्थ—हे सुन्दर श्री विग्रहवाली प्रिये। इस लिए यह एक निमेष वाले विरह को सहन कीजिए। मैं शीघ्र आपसे मिल कर फिर क्रीड़ा करूँगा, तब तक यह मेरे सहयोग को देनेवाले मेरे चित्र को देखिए। ऐसा कह कर अपना ही चित्र श्री प्रियाजी को देकर सन्तुष्ट किया॥ ३२७ ॥

जगाम चित्तं छलतो हरन्वै स्मितं विधायचविना प्रमाथ।
शिखण्डको कोमल गण्ड देशे विकीर्य्य वामं मुनि चित्त कर्षकः॥३२८॥

अर्थ—मन्द मुस्कयान से अपनी छवि के अनुभव से किशोरी जी के चित को छल पूर्वक हरण करके मुनियों के चित को चुराने वाले सुकोमल कपोलों पर बिखरे हुए अलकावली से सब बालाओं को प्रभावित कर के चल दिए॥ ३२८ ॥

ददौ मुखे मे रसवीटिकां पट प्रान्ते न कामं पवनं विधाय।
नृपात्मजो मे हृदिविश्वदृष्टिचौरः कुमारो वसति प्रगाढ़म॥ ३२९ ॥

अर्थ—हे सखि। अपनी पिताम्बरी के छोर से मेरे मुख पर हवा कर के एक सुमधुर सरस पान बीड़ा मेरे मुख में देकर विश्व की सम्पूर्ण दृष्टि और हृदय को चुराने वाले वे चक्रवर्ती राजकुमार मेरे हृदय में मजबूत होकर बैठ गए हैं।३२९।

प्रच्छाद्य मैं लोचन दर्पणे श्रीराजाधिराजार्चित पाद पुत्रः ।
प्रिये हसित्वा स्वजनेन वक्ति दोषो नजानामि मयाकृतः कः ॥ ३३० ॥

अर्थ —हे प्रिय सखि । वे श्री राजा धिराजाओं से पूजित पाद महाराज पुत्र मेरे नेत्रों को दर्पण दिखा कर और हँस कर मेरे मुख को ढँक कर अपने निजी जनों से कुछ कहते हैं और मुझ से नहीं बोलते हैं । मैं नहीं जानती कि मुझसे कौन सा अपराध हो गया ॥ ३३० ॥

पश्यप्रिये मत्तगजाधिरूढं नृपात्मजं सुन्दर वेषमेतम् ।
निरीक्षणं साचि हृदयं भिनत्ति मतिर्न निर्गच्छति हास्यासक्ता ॥ ३३१ ॥

हे प्रिय सखि ! सुन्दर शृंगार किये हुए ये प्रितम राजकुमार मत्तवाले हाथी पर चढ़े हुए कितने सुन्दर लग रहे हैं देखो तो इनकी टेढी कटाक्ष चितवन मेरे हृदय को विदीर्ण कर रही है । इनके मन्द मुस्क्यान में आशक्त हुई मेरी बुद्धि अब पृथक होकर कहीं नहीं जा सकती है ॥ ३३१ ॥

श्रीराजपुत्रः शुभ राजमार्गे प्रायाति श्रृएवन सखि कर्ण देशे ।
वातोऽपिया न स्पृशते कुमारी स्ता राजमार्गे जन संकुलेऽगुः ॥ ३३२ ॥

अर्थ :—हे सखि ! ये राजपुत्र श्री रघुनाथ जी राजमार्ग में चलते हुए कानों में प्रिय जनों के सुमनोहर बोलों को सुनते हुए चले जा रहे हैं । जो राजकुमारी स्त्रियों को वायु भी स्वतन्त्र स्पर्श नहीं कर सकता है, वे स्त्रियों जन-समूह के मध्य राजमार्ग में श्री प्रीतम प्राण धन श्रीरामजी को देखने के लिये आ उपस्थित हो गयी ॥ ३३२ ॥

चित्तं मुमोषा मरराजवेषः नारीषु निक्षिप्य सुदृष्टि चेटकम् ।
धावन् मनो याति तदंङ्क मारात् सौधेषु चित्तं रमयन्ति बाले ॥ ३३३ ॥

अर्थ :—हे बावली सखि ! इन्द्र के सदृश राजवेष धारण किये हुए ये प्रीतम सब स्त्रियों के चित्त में अपने कटाक्षों से जादू डालकर चले जा रहे हैं इसलिये बहुत सी नायिकाओं के मन तो दौड़ कर श्री प्रीतम की गोद में चले गये । और बहुतों के चित्त को श्री प्रीतम महलों के ऊपर ही रमा रहे हैं ॥ ३३३ ॥

पाटांङ्ग वेषा मल भूषणाभि स्फुटं प्रिये चेटकिनो भिलित्वा ।
मनस्समायाति न ह्यच मेलं कर्तुं छविस्सा च व्यथां ददाति ॥ ३३४ ॥

अर्थ :—हे प्रिय सखि ! श्री प्रीतम जु के अंग में दिव्य वस्त्र भूषणों का शृंगार प्रत्यक्ष जादू सदृश करता हुआ हमारे मन से मिलकर वह छवि मन को लेकर चली जाती है । फिर हमारे हृदय से प्रीतम का मेल नहीं कराती है तो तब वह छवि हमें अत्यन्त व्यथा देती है तथा वियोग से हृदय जलता है ॥ ३३४ ॥

बलं मनोज्ञं चतुरङ्गमारान्निरीक्ष्य वाद्यानि नदन्ति गायकाः ।
गायन्ति नाना हय हस्तिनोऽपि स्वलंकृता यान्ति सवेष शादिनः ॥ ३३५ ॥

अर्थ :—हे सखि ! हयदल, पैदल, रथदल, राजदल, ये चारो चतुरंगिणी मन-रमणीय सेना को देख कर गायक लोग शीघ्र गान करने लगे और विविध प्रकार के बाजे बजने लगे, सुन्दर श्रृङ्गार युक्त सवार लोग भी सुन्दर अलंकारों से सुसज्जित अनेक प्रकार के हाथी घोड़ों पर चढ़ कर चल रहे हैं ।। ३३५ ।।

समावृतोऽसौ सखिभिःसुनाग हयाधिरूढं नयनान्त बाणान् ।
हसन् विधायाक्षिपति प्रियेभ्रूचापेतु कामातिग मोहनश्च ।। ३३६ ।।

अर्थ :—हे प्रिय सखि सुन्दर हाथी घोड़ों पर चढ़े हुए समस्त सखाओं से घिरे हुए मध्य में शत्रुञ्जय हाथी पर बैठे हुये श्री प्रीतमजु काम को भी अपने सौन्दर्य से मोहित करने वाले अपनी भृकुटी रूपी धनुष में कानपर्यन्त विशाल नेत्रों के कटाक्षों को मन्द मुस्क्यानयुक्त विधान कर के सम्यक प्रकार हम सब के ऊपर कटाक्ष रूपी बाणों का प्रहार कर रहे हैं ।। ३३६ ।।

स्निग्धेति चित्रे श्रुति रत्न कुण्डले धामालका मूर्धसुरत्नचन्द्रः ।
नासासुमुक्ता मणिमञ्जु वाक्यं निष्कर्षयन्त्याऽलि मनोदृशौमे ।। ३३७ ।।

अर्थ :—हे आलि चित्र विचित्र चमकीले कोमल कान के रत्न कुण्डल और मस्तक में सुन्दर जुल्फें रत्नों के अर्धचन्द्र किरीटयुक्त मुकुट तथा नाक में नासामणि मन को अत्यन्त हरण कर रहे हैं वे श्री मुख से दिव्य मनोरञ्जक वाणी जो बोल रहे हैं, वे मेरे मन और नेत्रों को हठात् खींच कर ले जा रहे हैं ।। ३३७ ।।

मनोपथि श्री नृपनन्दनो में सुक्रीडति श्री सखिभिः समेतः ।
सुवीटिका वाणि सहास वीक्षणं तनुं मनो मे विकलं करोति ।।३३८ ।।

अर्थ :—अति सुन्दर शोभा सम्पन्न सखाओं के साथ से श्री चक्रवर्ती नन्दन मेरे मन के साथ मार्ग में सुन्दर खेल कर रहे हैं और इनका पान बीड़ा सुवर्ण मन्द-मुस्कान युक्त कटाक्ष मेरे तन मन को विकल बना रहा है ।। ३३८ ।।

भव्यासु रथ्यासुच राजमार्गे गृहे-गृहे मङ्गल राज सम्पदः ।
नितम्बिनीनां सखि भान्ति शौधजालेष्वलं धाम मुखौषधीशाः ।।३३९।।

अर्थ :—हे सखि ! राजमार्ग में अत्यन्त मंगलमय सुन्दर गलियों में माँगलिक राज सम्पतियों से सजी हुई सुन्दर नितम्ब वाली स्त्रियों के प्रकाश मान मुखचन्द्र घर-घर में महलों के छजा झरोखा, जालियों, में अत्यन्त सुन्दर प्रकाश कर रहे हैं ।। ३३९ ।।

कर्णान्त विश्रान्त विशाल नेत्रा श्चन्द्रानना विम्बफलं पिबन्ति ।
बह्वाञ्जन व्याजत आशु दृग्भ्यो रथ्या धरं सुस्फट मंगलस्थाः ।।३४०।।

अर्थ :—मंगल वस्तुओं को सुन्दर कर कमलोंमें ली हुई चन्द्रमा सदृश मुखचद्रानना कान पर्यन्त विशाल नयना कोई श्री प्रीतम जी को कहीं नजर न लग जाय इस लिये वह अंजन लगाने के बहाने शीघ्र श्री रघुनाथ जी को दृष्टि से देख कर विम्बा

इन किशोरियों को फिर त्याग नहीं करते। क्योंकि आप रस के अत्यन्त निवास स्थान है और क्या कहें ? रस स्वरूप ही तो आप 'राम' हैं ॥ ३४५ ॥

दृष्टवा सुतद्व्यंगवचो निशम्य विदूषका हास्यरसाभिहेतवः ।
प्राप्त विषण्णा जहसू रसं तद्रामानुकूल्या तद्वाप्ति रस्ति ॥ ३४६ ॥

अर्थ :—सखियों के पूर्वोक्त वचनों को सुनकर हास्य रस की प्राप्ति में कारण भूत विदूषक गण श्री रघनाथ जी के रस प्राप्ति में अनुकूलता प्राप्त होगी इसलिये व्यंग भाव को लेकर चकित हुवे ठहठहा हँसे ॥ ३४६ ॥

विहाय लज्जामुपविश्य जाले ष्वंङ्के नृदेवस्य सुतं निवेश्य ।
भव्यानि कृत्वा तरसा कुमारं पश्यन्ति चिते विशति च्छविरस्ता ॥३४७॥

अर्थ :—महलों के जालीदार छज्जों में बैठकर निःसंकोचता पूर्वक महाराज कुमार को अपने अंक में लेकर सुन्दर श्रृङ्गार कर के अतृप्त दृष्टि से उस छवि को अपने चित्त में आवेशित करके देखने लगी ॥ ३४७ ॥

नीलानृजुस्निग्धरसप्रदीपमथ स्फुरच्चारु शिखण्डयुक्तम् ।
पपुर्मुखाब्जं नयनद्विरेफै र्बक्रालकालीन् परिभूयकामम् ॥ ३४८ ॥

अर्थ :—कुटिल, कोमल, रस वर्षाने वाले, चमकीले चिक्कन नील अलका वलियों से आवृत मुख कमल की कुटिल अलका वलियों को हटा कर नेत्र रूपी भ्रमरों द्वारा मनमाने पराग रस को पान करने लगी ॥ ३४८ ॥

श्रीराजभोगीन्द्र सुतोऽबलाना मंकेषु सुक्रीड़ति लोल नेत्रः ।
माध्यर्यश्चकोर्य्य इव कान्त चन्द्रं पिबन्ति नारी लतिका प्रियालिः ॥३४९॥

अर्थ :—स्त्री रूपी लताओं के अनुरागी भंवर समस्त राजभोगों के भोक्ताओं के ईश्वर महाराज श्री अवधेश जी के पुत्र चञ्चल नेत्र अबलाओं के अंकों में सुन्दर विलास करते हैं वे नारियाँ भी चकोरी की तरह प्रीतम रूपी चन्द्रमा के सुधा रस को आश्वादन करती हैं ॥ ३०९ ॥

सखेभवत्कोमल हास विम्बाधरा ञ्जनाक्षीणि विलोक्य रक्ता ।
श्री मन्मुखामोद सुगण्ड बक्रा लकान्न गन्तुं प्रिय पार यामः ॥ ३५० ॥

अर्थ :—हे प्रिये; हे सखि; आपकी मन्द मुस्कान युक्त कोमल बिम्बा सदृश रक्त अधर अञ्जन युक्त नेत्र देख कर हमारा मन आसक्त हो गया है अब हमलोग अत्यन्त सुन्दर मुखारविन्द के आनन्द, सुन्दर कपोलों पर आवृत्त अलकावलियों के जाल में फँस कर अब निकल नहीं सकते हैं ॥ ३५० ॥

द्रष्टुं दृशोरेष हठी हि जातस्सर्व परित्यज्य नरेन्द्र सुनुम् ।
निवारणात् स्नेहतरं सुवर्धयन् विरूमुचतो वारि सुतप्त लोलः ॥ ३५१ ॥

अर्थ :—यह हमारे नेत्र को सब कुछ घर बार त्याग कर केवल श्री चक्रवर्ती कुमार को देखने के लिये हठ कर गयी। यदि हम रोकते हैं तो प्रेम रूपी वृक्ष को

बढ़ाता हुआ और उष्ण वारिधारा को वर्षा करता हुआ चञ्चल हो जाता है ॥ ३५१ ॥

सौन्दर्य दृष्ट्वा नृपनन्दनं मेमनः स्थिरत्वं सखि नैतिकुत्र ।
गिरामृताभ्र ध्वनिमानिशम्य सुजायते प्रीतितरो नवांकुरः ॥ ३५२ ॥

अर्थ :—हे सखि । महाराज कुमार के सौन्दर्य को देख कर अब मेरा मन कहीं भी स्थिरता को नहीं पा रहा है । मैं जब महाराज कुमार के वाणि रूणी मेघ की ध्वनि सुनती हूँ तो मेरे अनुराग के वृक्ष में नये-नये अंकुर निकलते हैं ॥ ३५२ ॥

वचः सुधां वर्षति नील मेघः कादम्बिनीभंग नवां नवां च ।
तदाति वृद्धाःसखि राम रूपसिन्धौ निमज्जन्ति सुनारि नद्यः ॥ ३५३ ॥

अर्थ :—हे सखी नील मेघ के सदृश श्री प्रीतम जु जब कलहंस की वाणी जैसे वचन रूपी अमृत की वर्षा करते हैं तो सुन्दर नारी रूपी नदियों में हर्ष की बाढ़ आ जाती है और वह श्री राम रूप समुद्र में प्रेम तरंग लेकर डूब जाती है ॥ ३५३ ॥

सुशोभनः श्री रघुनाथ रूप रागः प्रिये चित्त विमोहन श्च ।
लज्जा हरो बुद्धिविनाशकोपि धिगन्य रागं मति नीति भेत्ता ॥ ३५४ ॥

अर्थ :—हे प्रिये श्रीराम जी के रूप का जो अनुराग है, वह चित्त को तो मोहित कर देता है । लज्जा को हरण करके बुद्धि का विनाश करता है । अत्यन्त सुन्दर है, वह बुद्धि का चमत्कार किस काम का जिसमें अन्य का अनुराग हो ऐसे बुद्धि और नीति को नाश करने वाला श्रीराम जी के अतिरिक्त अन्य के अनुराग को धिक्कार है ॥ ३५४ ॥

अयः कणा मे मनसः सुवृत्तयः श्री रामरूपं सखि चुम्ब कोस्ति ।
उड्डीय रामोरसिसम्लिलग्नाःपुनश्च नायान्ति किशोरि भामिनि ॥ ३५५ ॥

अर्थ :—हे सखि मेरे मन की वृत्तियाँ लोहे के कण सदृश हैं । हे प्रकाशवति किशोरी । श्री रामजी का रूप चुम्बक है जो मेरे मन रूपी लोह कणों को उड़ा कर ले जाकर श्री रामजी के हृदय में लगा देता है तब मेरे मन की वृत्तियाँ लौट कर नहीं आती हैं ॥ ३५५ ॥

नृत्यन्ति चञ्चाः सखि नील कर्णाः
सर्वाङ्ग चन्द्रोज्वल कान्तिपुञ्जाः ।
रामानुकूलाः शिखिनो घनानां
यथोदये मंजुरवाः स्वलं कृताः ॥ ३५६ ॥

अर्थ :—हे सखि । नीले कान वाले चन्द्रमा के प्रकाश पुंज के समान समुज्ज्वल सर्वाङ्ग शरीर वाले श्री रामजी के घोड़े जैसे बादलों के उदय होने पर मोर नृत्य करते हैं उसी प्रकार वे सुन्दर अलंकारों से अलंकृत घोड़े श्री रामजी के अनुकूल नृत्य करते हैं ॥ ३५६ ॥

नृत्यनूहि रंगो परि भाति राज राजेन्द्र

सूनुः सखि वृन्द संस्थाः ।

शंके पुनः किं सखि मन्मथस्तु शिवं

विजेतुं बत सज्जितोऽभूत ॥ ३५७ ॥

अर्थ :—हे सखि श्री अयोध्या नगर के चौराहे पर सब दर्शकों के मध्य सखाओं के बीच में घोड़े पर ही श्री राज राजेश्वर कुमार जी नृत्य करते हुए ऐसे सुन्दर लग रहें हैं, मानो शंकर जी को जीतने के लिये कामदेव सशैन्य फिर से चढ़ाई कर रहा हो ॥ ३५७ ॥

प्रायो भुजगिन्य इव स्फुरन्ति वामालका रत्नझखाग्रगण्डे ।

निरीक्षणा देव विषोप सर्पन् सुमानिनीस्त्वालि मुमोह यासाम् ॥३५८॥

अर्थ :—हे आलि ! प्रीतम सुन्दर रत्नों के मकराकृत कुण्डलों सहित कपोलों में अत्यन्त सुन्दर अलकावली प्रायः विषवमन करने वाली नागिनियों की तरह झलक रही हैं । जिनको देखने मात्र से मानवती नायिका अत्यन्त मोहित हो गयीं ॥ ३५८ ॥

सुरत्न चित्रोज्ज्वल कण्ठ भूषणं वक्षस्थले मौक्तिक दाम मञ्जु ।

मन्ये प्रिये चन्द्र सभा विभाति स्फुटं मनश्चन्दति तत्र मग्नः ॥ ३५६ ॥

अर्थ :—हे प्रिये सुन्दर रत्नों के चित्र विचित्र कण्ठ भूषण और वक्षस्थल सुन्दर मोतियों की माला ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों चन्द्रमा की सभा लगी हो जिसमें मेरे मन बूड़ कर के तैर रहा है ॥ ३५९ ॥

नागाशनं जयति वाजि गतिर्विराजं

सूर्यं मनोभवगतिं हरदर्पमालि ।

दृग्देवताः किमु सुबुद्धि मतिः प्रसीद प्राणाः

कृतान्त वशगाः शिथिला भवन्ति ॥ ३६० ॥

अर्थ :—हे आलि ! प्रीतम के घोड़ों के जो गति है वह वायु या गरूड़ के वेग को भी पराजित कर रही है, सूर्य और मनोभव के चाल के अभियान को हरण कर रही हैं । अर्थात् घोड़े सूर्य के सदृश प्रकाशमान और कामदेव के सदृश सुन्दर हैं । बुद्धिमानी से स्वामी के रूचि के अनुसार नृत्य करते हुए प्रसन्न हैं । मालूम पड़ता है कि ये हमारे नेत्रों के देवता ही हैं जिन को देखने से प्रसन्न होकर हमारे प्राण प्रीतम के वियोग में निकले जा रहे थे सो रुक गए ॥ ३६० ॥

उष्णीष मस्य शुचि मूर्ध्नि विभाति रंकं

पंके रूहाभ कुसुमायुध बाण तीक्ष्णे ।

श्रीराजपुत्र नयने सखि मेहृदेच छिन्नं

सुपीन कुचगे तुविनापराधम ॥ ३६१ ॥

अर्थ :—इन श्री प्रीतम जी के पवित्र मस्तक में लाल रंग के कमल सदृश प्रकाशमान पाग अति ही सुशोभित हो रही है, हे सखि : ये श्री राजपुत्र के कामदेव के तीक्षण वाण सदृश नेत्र विना कसूर के मेरे हृदय और पुष्ट बक्षस्थलों में छेद कर रहे हैं ॥ ३६१ ॥

विम्बाधराद्भुतसुधांशुचि नाशिकां च
स्निग्धौक.पोलयुगलौ किलपश्यपश्य ।
मूल्यं ददामि सखि मानिनि ते मनोहक्
रामस्य राजतनयस्य विमुंच मानम् ॥३६२॥

अर्थ :—हे सखि देखो-देखो विम्बाफल सदृश लाल रंग के अद्भुत अमृतमय ये अधर, कैसी सुन्दर पवित्र नासिका, चिक्कन चमकीले दोनों कपोल हैं। हे सखि हे मानवति मैं तुम को मनचाहे इनाम दूँगी। तुम पहले राजकुमार श्री रामजी के मन नेत्रों के मान को छीन लो अर्थात् अपने सौन्दर्य पूर्ण नेत्रों से इन को अपने अधीन कर लो ॥ ३६२ ॥

राजन्तिवाजिषु मनोजसमाः सखाय
स्तन्मध्यगस्तुरग पृष्ट गतस्तु रामः ।
श्यामो यदाहँसति साचि निरीक्ष्यवामः
कंदर्प वृन्द वनिता विजहाति दर्पम् ॥ ३६३ ॥

अर्थ :—कामदेव के समान सखा वर्ग घोड़ों के ऊपर सुशोभित हैं उनके बीच में घोड़े के पीठ पर विराजे हुए श्याम सुन्दर श्री रामजी जब कटाक्ष करके देखते हुए हँसते हैं तो समस्त सुन्दरी स्त्री समाज अपने मान को त्याग देती हैं ॥३६३॥

अग्रे सरन्ति सखि वेत्र धरा विचित्रा रत्न
स्फुरत पुरट यष्टीधराः प्रवीणाः ।
वन्दी जनाः जय जयेति मुदोच्च रन्तः
श्रीमागधाः सरस वाच मुदीरयन्ति ॥ ३६४ ॥

अर्थ :—हे सखि ! अत्यन्त चतुर वेत्र धारी विचित्र रत्नों के प्रकाशमान सोने के दण्डों को धारण करके चल रहे हैं और फिर बन्दीजन आनन्दपूर्वक होकर जय-जय शब्दों के उच्चारण कर रहे हैं फिर श्री मगध जन सरस विरदावली का उच्चारण कर रहे हैं ॥ ३६४ ॥

नृत्यन्ति गायन्ति मुहुः पतन्ति नट्यो
विमाने ष्वथ गायकाश्च ।
देवाप्सरोऽनंग महर्षयश्चप्रियेऽति
चित्रं किमु मा दशाश्च ॥ ३६५ ॥

अर्थ :—हे प्रिय सखि । सुन्दर विमानों में नटियाँ नृत्य करती हुई गिर-गिर

जाती हैं पुनः गायक गुणगान करते हुये नृत्य करते हैं। इस विचित्र शोभा को देख कर देवता, अप्सराएं, कामदेव, महर्षिगण भी अत्यन्त चकित हैं तो मेरे जैसी के तो बात ही क्या है ? ॥ ३६५ ॥

गृह्णन् प्रणामं परितो जनानां निरीक्ष्यते
यत्र च लोल नेत्रः ।
श्रुति स्स्फुरत् कुण्डल कुन्तलैश्च परांङ्
मुखत्वं सखियाति कामः ॥ ३६६ ॥

अर्थ :—हे सखि चञ्चल नेत्र वाले श्री प्रीतम जी चारों ओर अपनी जनता के प्रणामों को ग्रहण करते हुए जिधर देखते हैं उधर आपके कानों के कुण्डलों और अलकों की चमक को देख कर कामदेव को भी वैराग हो जाता है ॥ ३६६ ॥

रूपं विलोक्य नृपराजसुतस्य देव्यो
वैह्वलपतां सुमुखि तंस्वनु भूयभूय ।
याता यथा परमहंस गतिं च भूयो
नानाश्व हास्तिक गतान् सुसखीन् स्वजन्तान् ॥ ३६७ ॥

अर्थ :—हे सुमुखि । श्री चक्रवर्ती कुमार के रूप को देख कर तो देव नारियाँ भी बारम्बार अनुभव करके विह्वल हो जाती हैं । अनेक प्रकार के हाथी घोड़ों पर बैठे सुन्दर सखा और स्वजनों के बीच श्री प्रीतम जी को बारम्बार अनुभव करके परम हंसों के जैसी उन सब की गति हो गयी ॥ ३६७ ॥

देव स्त्रियः सुमुखि पश्य मिथो सखायः
क्रोड़े भुजोन्न मनकोश्चतर स्तनीस्ताः ।
लज्जामिताः सखिजहास पटेन रामो
प्रच्छादय हास्य रसिकोऽपि मुखार बिन्दम् ॥ ३६८ ॥

अर्थ :—हे सुन्दरानने । उन परमहंसों के सदृश देव स्त्रियाँ सखाओं की गोद में बैठ कर गलबाँहीं देती हैं, इस प्रकार उन उच्च स्तनी देवांगनाओं को देखकर सखा वर्ग भी आपस में और हास्य रस रसिक श्री रामजी भी अपनी पीताम्बरी के छोर से अपने मुखारविन्द ढाँक कर हँसने लगे तो वे देवागनायें लज्जित हो गयीं और विनम्र हो गयीं ॥ ३६८ ॥

उष्णीष मरुय शुभ मध्र्दनि भाति कंठे
जैवात्रिकाभमणि मौक्तिक हार मालि ।
शंके शशाङ्क उदित स्तपनोऽपि बालः
शृङ्गार नील गिरी राजतले समं वै ॥ ३६६ ॥

अर्थ :—हे आलि । इन प्रीतमजी के सुन्दर मस्तक में अरुण पाग, कण्ठ में चन्द्रमा के सदृश प्रकाशमान मणि मोतियों के हार ऐसे प्रकाश कर रहे हैं मानों

शृंगार रस नील पर्वतराज बन कर नीचे में चन्द्रमा और बाल सूर्य उदय हुए हों ॥ ३६९ ॥

वाहुर्मत्ति भुजगभोग निभोदशन्मे में रामस्थ
चारू निहितः प्रिय सख्युरंसे ।
तत्कुन्तलासि हत साधु मनो मृगं मे वामाननेन्दु
विधृतः सखि सं छिनंत्ति ॥ ३७० ॥

अर्थ :—हे सखि शेष केशरी सदृश लम्बी भुजाओं से अपने प्रिय सखाओं को गलबाँही दिये हुए उन भुजा रूपी नाग ने मेरी बुद्धि को डस लिया इतना ही नहीं मेरे साधु मन-मृग को भी उन प्रीतम के मुखचन्द्र में बिखरे हुए जुल्फ रूपी तलवार ने काट दिया, उस पर भी मंद मुस्कान रूपी छूरा से छेदते हैं ॥ ३७० ॥

सर्वाङ्ग भूषण मनोहर वेष रम्यो
हास्यं करोति सखि यहिं सखी न्प्रतीयम् ।
दीप्तिस्तु मानिनि विकर्षति मानसं मे
रामे निमज्जयति राजसुते प्रकामम् ॥ ३७१ ॥

अर्थ :—हे सखि । ये श्री प्रीतम् जब सर्वाङ्ग में सुन्दर मनोहर भूषणों को धारण करके रमणीय वेष बना कर हास्य करते हैं तो हे मानिनि, इनका प्रकाश मेरे मन को जबर्दस्ती खींच कर राजपुत्र श्री रामजी में इच्छानुकूल डुबा देता है ॥३७१॥

पद्भ्यां यदेति सखि मण्डल मध्य
वर्तीरामः समस्त गजराज गति मृदुभ्याम् ।
सद्रत्न मञ्जु मणिनूपुर सिंजिताभ्यां
चित्तं तदा क्रमति मे समुपानहाभ्याम् ॥ ३७२ ॥

अर्थ :—हे सखि जिस समय से श्री रामजी अपने सुकोमल पाद पद्मों से मतवाले गजराज की सी गति से सखाओं के मण्डल के मध्य में चलते हैं तो उस समय इनके श्री चरण कमलों में सुन्दर रत्न मणि नूपुरों की आवाज और जरीदार जूतों की शोभा मेरे मन पर आक्रमण करती है ॥ ३७२ ॥

पंकेरूहाभ नयने सखि साञ्जनेऽस्य हृत्
पद्म केति सरसे विविशुर्विशाले ।
हास्येन साकमुत सुन्दरि धर्षयित्वा तिष्ठामि
मार वशगा किल वंचितेव ॥ ३७३ ॥

अर्थ :—हे सखि ! इन श्री प्रीतम जी के कमल सदृश प्रकाशमान विशाल नेत्र अति सरसतापूर्वक मेरे हृदय कमल में प्रवेश कर गये हैं । हे सुन्दरी मन्द मुस्कान के साथ मेरे हृदय को घर्षण कर के कामदेव के अधीन कर दिया, वंचिता जैसी अब मैं कैसे ठहरूँ ॥ ३७३ ॥

प्रोच्चारयन्ति विनयं मणि हेम वेत्र यष्टि

स्फुरत् करतलाः सवया जनानाम् ।

दौर्वारकाश्च परितः सखि वन्दिनोऽपि

गृहणाति तं सरस वाच मुदा वचोभिः ॥ ३७४ ॥

अर्थ :—मणि और सुवर्ण के बेंतों को तथा रत्नों से परिवेष्टित प्रकाश मान दण्डों को हाथ में लिये हुए द्वारपाल और सेवक बन्दी वर्ग चारों तरफ से जो भी विनय उच्चारण करते हैं उनको श्रीरामजी अत्यन्त रसीली वाणी से आनन्दित कराते हुये उनकी विनय को ग्रहण करते हैं ॥ ३७४ ॥

कन्दर्पकोटि निभभाः सखि मध्यवर्ती

श्रीराजराज तनयः सित लौल नेत्रः ।

व्यक्तं प्रिये हरति पंच शरासनस्य दृष्टी

मनः किमु समानतमावलानाम् ॥ ३७५ ॥

अर्थ :—हे सखि सखाओं के मध्य श्री चक्रवर्ती कुमार श्याम श्वेत चञ्चल कटाक्षों से करोड़ों कामदेवों को लज्जित कर रहे हैं, पाँच बाण वाले कामदेव के प्रत्यक्ष मन और दृष्टि को हरण कर रहे हैं तो हे प्रिये, हम साधारण अवलाओं की तो बात ही क्या कहना है ? ॥ ३७५ ॥

श्रीरामो वनमालयातिमधुरो मन्दं जहास प्रिये

दृष्ट्वामामवलोक्य भाव सितया दीप्त्यातयामानसम् ।

मत्तं मे सचनेत्रयौः प्रवसति श्री चित्तचौरःसदा,

सेत्थं तद्वचनं निशम्य रमणी ह्यश्रूण्यमुञ्चन्मिषात् ॥ ३७६॥

अर्थ :—हे प्रिय सखि । अत्यन्त मधुर वनमाला को धारण किये हुए श्रीरामजी मुझको देख कर मन्द मुस्काये तो शुद्ध भाव के प्रकाश से मन के अन्दर उन प्रीतम को मैंने देखा तो मेरा मन मतवाला हो गया और वे श्री चितचोर सदा के लिए इसी भाव से मेरे दोनों नेत्रों में बैठ गये हैं । उस सखी के वचन को इस प्रकार सुनकर वह सुनने वाली रमणी भी इसी अनुराग के बहाने आँसू बहाने लगी ॥ ३७६ ॥

राजद्वार्य्यं भवन्द्विसप्त भुवन श्रीमन्नरास्ते स्त्रियः

श्रीदेवा मुमुहुर्नरेन्द्रतनयं संवीक्ष्य खेऽवस्थिताः ।

सख्युः तत्करपंकजेन च करं गृहणन् मृगेन्द्रक्रम

स्ताम्बूला दनलोल रक्तनयनश्चेतांसि कर्षन्ययौ ॥ ३७७ ॥

अर्थ :—श्री चक्रवर्ती महाराज के दरवार में चौदहों भुवन के अत्यन्त शोभा सम्पन्न नर नारी तथा आकाश में स्थित श्री जी और देवगण भी श्री रामजी की

देख कर अत्यन्त मोहित हो गये और श्री महाराज कुमार भी अपने सखाओं के कर कमल को अपने कर कमल से पकड़ कर पान चबाते हुये सिंह की सी चाल से चलकर अपने चंचल नेत्रों से सब के चित्तों को छीन कर आगे चले ॥ ३७७ ॥

दृष्ट्वा रूपमतीव सौभग तरंस्त्रीडिम्भका बार्धकाः

कामान्धा वनिता विहार निरता धूतेरता ये जनाः ।

तेऽपि स्वात्मगतिं विहाय मुमुहुः चित्रेव संचित्रिता

किं चित्र जड़चेतने तर गतिं वाद्यादि सं स्तम्भिताः ॥ ३७८ ॥

अर्थ :—यह श्री महाराज कुमार के रूप की अतिशय सुभगतर शोभा को देख कर वनितायें, बालक, वृद्ध, कामान्धलोग, जो वनिता विहार में आसक्त थे और जो जुवा खेलने में आसक्त थे ऐसे जन भी अपनी आत्मा की लोक गति को त्याग कर श्रीरामजी के रूप को देख कर चित्र की तरह विमोहित हो चित्रित हो गये। तब जड़ चेतन इतर जीवों की क्या गति है, जिनके सौन्दर्य स्नेह में वाजा आदि भी स्तम्भित हो जाते हैं ॥ ३७८ ॥

स्तब्धा वृक्षगणाः पतङ्ग विहँगा मेघाः जलाः पर्वताः

कूजत्फुल्लताः प्रफुल्लतरवः स्थाणुत्वमाप्ताश्चलाः ।

रूपौदार्य गुणार्णवं रघुपतिं दृष्ट्वान्तिके मोहिता

मार्गेगच्छति संगता नृपतयः नार्य्यश्च सोपायनाः ॥ ३७९ ॥

अर्थ :—वृक्ष लताओं के समूह, पतंगा, पक्षी, मेघ, जल, नदियाँ, पर्वत आदि सभी श्रीरामजीके रूपको देखकर स्तम्भित हो गए, फुले हुए वृक्ष लतायें सब गुँजने लगी, अचल सचल हो गये और जो चलायमान थे वे अचल हो गये। अहो यह श्री रघुनाथ जी का रूप सौन्दर्य आदि गुणों का समुद्र तो दर्शन मात्र से सब को मोहित कर लेता है, जिनको देख कर राजा महाराजा और उनकी स्त्रियाँ भी उपायन भेंट लेकर आप के साथ मार्ग में चलने लगे। ३७९ ॥

पश्यन्दिक्षु विदिक्षु सम्प्रति जनाञ्छृण्वन सुकोलाहलं,

यच्छन्भूषण वस्त्र मौक्तिक मणीन्सम्भूषयन्नर्तकान् ।

सर्वान् स्वात्मरतान प्रतोष्य विधिवत् प्रोत्साहयन प्रोत्सुकान

प्रासादापण पौर जाननिकरान पश्यनययो राघवः ॥३८०॥

अर्थ :—श्री राघवजी दिशा और विदिशाओं में अपने जनों के समयानुकूल कोलाहल को सुनते हुए और वस्त्राभूषण मुक्तामणि आदिकों से नर्तकों को भूषित करते हुये सबको इनाम आदि सम्मान देते हुए अपने में अनुराग रखने वाले सबको अनेक प्रकार सन्तोष देते हुए उत्सकों को प्रोत्साहित करते हुए महलों तथा गलियों में पुरजनों को और निजी जनों को देखते हुए भीतर जा रहे हैं ॥ ३८० ॥

॥ माता पिता के महल में प्रवेश ॥

भूश्चिन्तामणि चित्ररत्नखचिता सद्रत्नजालास्तथा,

सद्दिव्यास्तरणा विचित्र मृदुलाश्चित्राश्चितानास्ततिः।

प्रासादेमृगपक्षि शब्दगमनैः शोभायमाने शुभे,

मध्येरत्नमयासने दशरथो राजाधिपो राजते ॥३८१॥

अर्थ :—चिन्तामणिमय भूमि रत्नखचित अनेक प्रकार की चित्रकारी, सुन्दर रत्नों के झरोखे और जालियाँ, दिव्य बिछावन, चित्र विचित्र अनेकों प्रकार के कोमल पर्दे बितानों के समूह मृग, पक्षियों तथा अनेक स्त्रियों के चलने की और उनके संगीत गान तथा नूपुरादि के सुन्दर तालादि से गुँजित अतिशय शोभायमान दिव्य महल के भीतर मध्य रत्नसिंहासन पर विराजमान महाराजाधिराज दशरथ जी हैं॥ ३८१॥

राजन्ते परितोऽस्य लोलमहिषी वृन्दाः सुवेषाः प्रियाः

छत्रं चन्द्रनिभ मुदा धृतवति काचिच्छुभेचामरे।

केचित्तद्व्यजने मुदा ग्रुकुरुतः काचित्सुगन्धानिच,

ताम्बूलानि विधाय रत्नमणिमत् पात्रेषु तिष्ठन्तिकाः॥ ३८२॥

अर्थ :—महाराज दशरथ जी के चारों तरफ सुन्दर श्रृङ्गार को हुई अनेक प्रकार की अनुराग चँचला महारानियों के समूह अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। उनमें कोई सप्रेम चन्द्रमा सदृश प्रकाशमान छत्र ली हुई हैं। कोई सुन्दर चामरों को ली हुई हैं और कोई आनन्द निमग्ना व्यजन ली हुई हैं। कोई विविध प्रकार के इत्रादि सुगन्धित वस्तु और भोग विधान आदि की वस्तुओं को ली हुईं मणिमय पात्रों से कर कमल सुशोभिता अनेक प्रकार की सेवा में है। इस प्रकार अनेक स्त्रियाँ पास में खड़ी हैं॥ ३८२॥

काश्चिद्रत्न सहेम यष्टि मणिम द्वेत्रास्तु तिष्ठन्ति च,

रूपाब्धीनति सुन्दरान्दशरथः स्वांके कुमारान्दधौ।

तेषामानन चन्द्रमण्डल मलंपश्यन्प्रमोदोदधि

र्वृद्धिंयात जनौघ वीचि मधुरा वाद्यध्वनि सुन्दरि॥ ३८३॥

अर्थ :—हे सुन्दरी। कोई मणिमय सुवर्ण की सुन्दर छड़ी ली हुई खड़ी हैं। इस प्रकार उस समाज में रूप के समुद्र अतिशय सुन्दर कुमारों को महाराज श्री दशरथ जी ने अपनी गोद में बैठाया और उनके मुखचन्द को देख कर आनन्द समुद्र उमड़ आया और समाज में मधुर बाजाओं की ध्वनि लहर जैसे गूँज उठी॥ ३८३॥

विद्युच्चम्पक हेमपुष्प निचयः श्रीमन्मदध्वंसिका,

स्तत्पत्न्यो विलसन्ति राजमहिषी स्वांकेषु वामाननाः।

पीठेषु प्रविभान्ति हेम चषकान्यत्यद्भुतानि क्रमाद्

सम्भृंगारक हेमरौप्य विविध श्रीपात्र वृन्दानि च॥ ३८४॥

अर्थ :—बिजली, चम्पापुष्प, तप्तसुवर्णराशि सदृश गौर वर्णा श्री जी के सौन्दर्याभिमान को भी ध्वस्त करने वाली महाराज श्री दशरथ जी की राजमहिषी चन्द्रमुखी महारानियाँ अपनी सिंहासनों पर कुमारों को गोद में लेकर अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं और बहुत सी महाराज की रानियाँ विविध प्रकार की मणिमय चौकियों में रखे हुए सुवर्ण की तस्तरी, झारो, आदि अनेक पात्रों में विविध प्रकार की वस्तुएँ लेकर सेवा कर रही हैं ॥ ३८४ ॥

श्रीमद्राजवरेन्द्र राजमहिषीः सहधर्मिण्योर्मुहुः
षड्रस स्वादुनामिच मोदकानि मधुराण्याः भोजयन्न्तिप्रिये।
भक्ष्यान्यालि सुमण्डलोत्सुकतमाभोज्यानिलेह्यानिच,
चौस्यान्याचमनं प्रफुल्लनयना संस्कारयन्त्ति स्मताः ॥ ३८५ ॥

अर्थ :—हे प्रिय सखि । श्रीमान महाराजाधिराज श्री चक्रवर्ती महाराज की प्रधान महिषी श्री कौशल्या अम्बा और साथ की समान धर्मा महारानियों ने सब कुमारों को षठ्‌ रस भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोस्य विविध प्रकार के मधुर स्वादमय लड्डू मिठाई आदि पदार्थों को पवादिया हे आलि, और भी जो स्नेह उत्सुका हैं वे भी हर्षातिरेक नेत्रों से अवलोकन कर मधुर पदार्थों को पवाती हैं और पश्चात् सब कुमारों को आचमनी कराया गया ॥ ३८५ ॥

ताम्बुलानि मुखेनिधाय सुरभीन द्रव्यानि लेपपुन
रचक्रुः स्नेह भरश्लथ द्रुत हृदो यन्त्राषधीनांगणाः ।
वद्धन्त्यालि तदंगकेषु सभयाः श्री राजराजत्मजान्,
श्रीवामाननचन्द्रपारणदृशः सर्वे चकोराइव ॥ ३८६ ॥

अर्थ :—तदन्तर उन कुमारों को सुन्दर पान चवाया और अतरादि सुगन्धित पदार्थों को अंग में लेपन कराया स्नेह भार से द्रवित हृदय से अनेक प्रकार की जड़ियों को नजर न लग जाय इस हेतु से अंगों में बाँध दिया गया। हे आलि इस प्रकार महाराज की सभा में अत्यन्त सुन्दर इन कुमारों कें मुख चन्द्र को देख कर सारी सभा चकोर वत् हो गयी ॥ ३८६ ॥

श्रीमद्राजवरस्तथा सवनिता दृगदोष भीत्या नवै
वस्त्रप्रावरणैः सुरत्न मणिमद्द्वाराणि संछाद्य च ।
घृत्वांकेषु मुखानि पश्यलवणं रासनां च वह्नौमुहु
जुहृत्यंग गणान निरीक्ष्य च तृणान भजन्ति भीत्यादृशः ॥ ३८७ ॥

अर्थ :—इसके बाद श्री चक्रवर्ती महाराज सब रानियों के सहित कुमारों को कहीं नजर न लग जाय इस भय से महलों के मणिमय रत्नों के सभी द्वारों में नवीन वस्त्रों के पर्दे लगवा दिये और कुमारों को अपनी गोदी में बैठा कर राइ लोन उतार के अग्नि में डालतो हैं कुमारों के मुख चन्द्र को देख कहीं हमारी नजर

न लग जाय, इस भय से मातायें तृण भंजन करती हैं ॥ ३८७ ॥

काचिद्राज पुरश्चकोर नयनी प्रस्थापयद्मानिनी

सास्त्रक्कार सुयोषितं कृतवती वेषंगता तत्र च ।

रामं पंकजमालि राजमुकुटोत्संगे हसंतं ददौ,

मुद्रामेव ललौसितां बहुधनं नान्यैजनैरर्पितम ॥३८८॥

अर्थ :—कोई माला बनाने वाली चकोर सदृश नेत्रवाली स्त्री सुन्दर शृङ्गारयुक्त होकर महाराज अवधेश जी के समीप में आई और गोद में बैठे हुए श्री रामजी के हाथ में एक कमल दिया। हँसते हुए श्री रामजी ने उस कमल को लिया तो श्री चक्रवर्ती महाराज ने उस मालिन को आदर पूर्वक बैठाकर न्योंछावर में एक मुद्रा दिया पश्यात् और प्रेमियों ने बहुत साधन दिया तो उस मानिनी ने और का दिया हुआ धन नहीं लिया ॥ ३८८ ॥

वस्त्रंद्रव्यविभूषणानि ददते श्री राजपत्न्यो मुदा

तेषा मभ्युदयाय विप्र वनिता भृत्यादिकेभ्योभृशम् ।

माधुर्य मुखपद्म लोल नयना लीनां निरीक्ष्याद्भुतम्,

हृदयानन्द परिप्लुता सुनयनं मुञ्चन्ति तोयं शुभम् ॥३८९॥

अर्थ :—श्री राजमहारानी जी ने उन राजकुमारों के अभ्युदय के लिये आनन्द में भर कर बहुत वस्त्राभूषण द्रव्य न्योछावर करके दिया तथा ऐसे भी सेवक वर्गों को और ब्राह्मण पत्नियों को बहुत दान दिया। कुमारों के मुख कमल के अद्भुत सौन्दर्य मधुरिमा को देखने में चंचलता पूर्वक हृदय के आनन्द समुद्र में बूड़ गयी और नेत्रों से हर्षाश्रु बहने लगी और वे अपने पुत्रों के कल्याण की चाहना से दान करने लगी ॥ ३८९ ॥

विम्बोष्टैरलकै युताम्मुख विधून पश्यन्महिष्यो दधिः

केशालिस्त्रिवली तरंग कवरी स्रस्तप्रसूनोन्मणिः ।

बृद्धियाति वचोध्वनिःस्फुटतर सर्वांग यादो गणो,

दृगभिस्तत्र मनीषिणोति मधुरं मज्जन्ति नित्यं मुदा ॥३९०॥

अर्थ :—हे आलि। सभी महारानियाँ रूप समुद्र हैं उनके केश भ्रमर हैं और त्रिवली तरंग है और शिर की चोटी से गिरते हुए फूल समुद्र के रत्न हैं और प्रेममयी वार्ता तथा संगीत ही उस सागर की गर्जना है। अंग प्रत्यंग ही जलचर वृन्द हैं सज्जन मनिषी गण इस अनुरागमय मधुर समुद्र में नित्य स्नान करते हैं इस प्रकार का यह महारानी रूपी समुद्र विम्बाफल सदृश लाल अधरों वाले और शिर के घुंघराले केशों से घिरे हुये इन बालों को मुख चन्द्र रूप चन्द्रमा को देख कर उमड़ आया ॥ ३९० ॥

आन्दोलयन्ति मणिरत्नमयेषु कार्महिंडोल वधु तनयानलगयन्ति कण्ठे ।
हस्ताननाब्जनिचयान् सखि चुम्ब्य चुम्ब्यगायन्तितः कलरवा च्छ्रमविन्दु
रम्याः ॥३६१॥

अर्थ :—मणिरत्नमय झूलों में कभी झुलाती हैं कभी पुत्रों को मनमाना गले से कंठ लगाती हैं, वे सखि उन बालकों के हस्त कमलों को चूम-चूम करके सुन्दर कोकिल कंठ से गाती हैं और आनन्दपूर्वक गाने से उनके मुखचन्द्र में श्रमविन्दु सुधा सदृश झलक रहे हैं ॥ ३९१ ॥

नित्यंशिरीष कुसुमस्फुट सौकुमार्य श्रीप्राणनाथमृदु सुन्दर रामचन्द्र ।
अंकानि नो त्यजतु राजवरात्म नाथ त्वत्तो विना भवति कल्प समो
निमेषः ॥३६२॥

अर्थ :—शिरीष पुष्प के सदृश नित्य सुकुमार हे श्री प्राणों के नाथ, हे कोमल, हे सुन्दर, हे रामचन्द्र, हे राजवरात्म नाथ, हम लोगों की गोद को त्याग न कीजिये, आपके बिना हमारे लिए एक निमेष कल्प के समान बीतता है ॥३९२॥

सार्द्धं सप्तशतानि राजमहिषी रत्नानि हर्षात्प्रति,
प्रासादेषु वधू कुमार स सखीन्फटकारयन्निश्चवम् ।
कौशल्ये तव सूनु कीर्ति ममलां लीलां मनो हारिणीं,
शम्भु ब्रह्म सनत्कुमार मुनयः श्रुत्वा प्रनृत्यन्तिच ॥३६३॥

अर्थ :—सातसौ सखियों के सहित महारानी श्री कौशल्या अम्बाजी अत्यन्त हर्ष-पूर्ण होकर बहुतसा रत्न आदि न्योछावर करके दान देती हैं तो याचकगण स्तुति में कहते हैं कि "हे कौशल्ये ! आपके पुत्र की निर्मल कीर्ति और मनोहारिणी लीला को शंकरजी, ब्रह्माजी और सनतकुमार तथा अन्य मुनिगण सुनकर आनन्द मग्न होकर नृत्य करने लगते हैं । इतने ही में महल के कोठे से श्रीराम कुमारजी की प्राणप्रिया श्री किशोरी जी की कोई सखी सखियों के सहित श्री अम्बाजी को निश्चयात्मक फटकार वाले वचनों की सुनाई को ॥ ३९३ ॥

॥ श्री रामजी का कनक भवन में लौट आना ॥

रामं दर्शय राज मानिनि जने प्रीत्यानयंमा कुरु,
श्यामं देहि न चेदहो प्रिय मनो मे देहि राजात्मजम् ।
दास्यामि प्रिय मात्मजं कथमहो दक्षे मनो गृह्यताम्,
तत्र कापि न चानयं कुरु शिशौ मुग्धे मनोहारिणि ॥३६४॥

अर्थ :—हे राजमानिनि ! प्रेमाधीन होकर अन्याय न करो । अपने जनों को श्री रामजी का दर्शन कराओ । श्याम सुन्दर राजकुमार को हमें दो, यदि नहीं देती है तो अहो अपना मन ही हमें दे दो । उस सखी की इसप्र कार की बातों को सुनकर श्री कौशल्या जी बोली कि हे चतुरी, अहो मेरे अत्यन्त प्रिय आत्मज

पुत्र को मैं कैसे दे दूँगी तूँ मेरे मनको ही ग्रहण करो। हे मुग्धे, मनोहारिणी वहाँ पर मेरे कुमार के प्रति किसी प्रकार का अन्याय न करना अर्थात् मेरे पास आने से नहीं रोकना ॥ ३९४ ॥

गन्धर्व दर्प दलनाः सखि रत्न कुंजे गायन्ति लोल नयनाः शुचि चारुमूर्छम्
श्रुत्वाविमूर्छतिशिवो मृदुमंजु नाथों मीनध्वजी दिविषदः किमुलोक वृन्दः ॥३९५॥

अर्थ :—कनक भवन के एक महान रत्न कुँज में हे सखि, चंचल नेत्र वाली गन्धर्वों के संगात विद्या के अभिमान को मर्दन करने वाली पवित्र सुन्दर इकाईश मुर्छनों के सहित श्री युगल सरकार के आगे गाने लगी तो उन कोमल स्वर से गाने वाली दिव्य रूपवती नारियों के गीतों को सुन कर शिवजी, कामदेव, स्वर्ग के समस्त देवता भी आनन्द से मूर्छित हो गये तो फिर अन्य लोकों की तो बात ही क्या ? ॥ ३९५ ॥

॥ श्री युगलसरकार का स्नान करना ॥

उद्वृतयन्त्य बयवेष्वथ गन्धतैलं नारायणारव्यमथ चन्दनकुंकुमादीन।
लिपन्ति चूर्णतरुणागरु मंजुगंन्धान् सोऽपिस्तनोपरिकरौचरणौ करोति ॥३९६॥

अर्थ :—चन्दन, कुमकुमादि, अगर आदि के गन्ध द्रव्यों से उबटन बनाकर युगल सरकार के अंगों में लेपन करके फिर नारायण नामक सुगन्धित तेल से सखियाँ तेल उबटन कर रही है और श्री रघुनाथ जी भी अपने हाथ और चरणों को उन सखियों के बक्षस्थलों में रखते हैं ॥ ३९६ ॥

कुंञ्जांगकान्त्या सखि चित्रतोऽस्ति तनोति तद्रूप वितान मेतत्।
प्रिये सखीनां कलगान शिक्षित मलिव्रजं स्फोटति दिक् प्रतिध्वनिः॥३९७॥

अर्थ :—चित्र विचित्र चित्रकारियों से युक्त प्रकाशमान कुँज में श्री युगल सरकार के रूप प्रतिबिम्बित होकर उस रुप का वितान तना है। हे प्रिय सखि! सखियों के संगीत से शिक्षा पाये हुये भ्रमर भी जब सखियों के साथ में गाने लगे तो उनके गान के कल्लोल दिशाओं से टकरा कर प्रतिध्वनि पुनः इन्हीं को शिक्षा देने लगी ॥ ३९७ ॥

विभान्ति रत्न कुण्डानि सरांसि सरितो बहु।
मणि विद्रुम वैडूर्य सोपानैः समलं कृताः ॥३९८॥

अर्थ :—श्री युगल सरकार के उस स्नान कुंज में वैदुर्य, विद्रुम आदि मणियों से बने हुए चित्र विचित्र अलंकृत घाट वाले सरोवर नदियाँ कुंड अद्भुत रत्नमय शोभा प्रकाश कर रहे हैं ॥ ३९८ ॥

तप्तोष्णवारिभिर्हंसै भ्रमराणां कलस्वरैः।
कुंज द्विहङ्ग नृत्यैश्च क्रीड़ा नौभिश्च मन्दिरैः ॥३९९॥